सर्वोदय-संयोजन

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, काशी

प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ,
वर्धा (बबई राज्य)

पहली बार . ७०००
अप्रैल, १९५७
मूल्य . एक रुपया

मुद्रक
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस,
गायघाट, वाराणसी

दो शब्द

जब से देश आजाद हुआ है, सब सयोजन के विषय मे सोचने लगे है। अगर प्रवाह-पतित जीवन से ऊपर उठना है, तो उसका उपाय सयोजन ही है। सयोजन के मानी है, पहले विचारपूर्वक समाज के लिए कुछ लक्ष्य निश्चित करना और फिर आवश्यक साधन जुटाकर मितव्ययता के साथ इनका उपयोग कर जल्दी-से-जल्दी इन लक्ष्यो को प्राप्त करने मे भिड जाना। इसलिए योजना का स्वरूप और सामर्थ्य उसके लक्ष्यो पर निर्भर करता है।

सबसे पहली बात यह है कि सर्वोदय समाज की वर्तमान रहन-सहन और सारी दृष्टि मे क्रान्ति कर देना चाहता है। वह एक नये अहिंसक समाज का निर्माण करना चाहता है। इसलिए ऐसे समाज का नये सिरे से निर्माण करनेवाली योजना का उसके पास होना जरूरी है। सर्वोदय मे विश्वास करनेवालो के सामने अपने लक्ष्य स्पष्ट और सुनिश्चित होने ही चाहिए, और साथ ही इन लक्ष्यो तक समाज को ले जानेवाला कार्यक्रम भी। सन् १९५० मे सर्वोदय-योजना-समिति ने इस प्रकार की एक सर्वोदय-योजना के सिद्धान्त प्रकाशित किये थे। उसमे इन लक्ष्यो और कार्यक्रमों को स्पष्ट करने का एक यत्न किया गया है। किन्तु पिछले कुछ वर्षों की घटनाओ से नये-नये अनुभव हुए है। भूदान-यज्ञ की सफलताएँ और सर्वोदय के आदर्श के प्रति बढा हुआ आकर्पण, इन सबको देखकर सर्व-सेवा-सघ अनुभव करता है कि अब सर्वोदय के इन लक्ष्यो और कार्यक्रमो को समाज के सामने पेश करना जरूरी हो गया है। इसलिए ऐसा एक विस्तृत वक्तव्य तैयार करने के लिए उसने एक सर्वोदय-योजना-समिति की नियुक्ति कर ली है। (इस समिति मे १. श्री धीरेन्द्र मजूमदार, २. श्री जयप्रकाश नारायण, ३. श्री अण्णा-

साहब सहस्रबुद्धे, ४. श्री र० श्री० धोत्रे, ५. श्री सिद्धराज ढड्ढा, ६. श्री अच्युत पटवर्धन, ७. श्री रवीन्द्र वर्मा, ८. श्री नारायण देसाई, ९. श्री शंकरराव देव हैं। संयोजक श्री शंकरराव देव हैं।)

इस बीच कांग्रेस-पार्टी और भारत-सरकार ने निश्चय कर लिया कि वे समाजवादी समाज की स्थापना करना चाहते हैं। दूसरी पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य भी यही निश्चित किया गया है। वास्तव में यह समाजवादी समाज-व्यवस्था स्थापित करने के लिए ऐसी कई योजनाओं की जरूरत होगी। दूसरी पंचवर्षीय योजना उनमें से पहली है। इसलिए अब सर्वोदय में विश्वास करनेवालों के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वे देखें कि कांग्रेस और भारत-सरकार जिस समाज की स्थापना करना चाहते हैं, वह कैसा है, उसका अध्ययन करें। साथ ही वे यह भी देखें कि खुद उन्होंने अपने सामने जिस समाज-रचना का चित्र बना रखा और उसकी प्राप्ति के लिए जिन साधनों और संस्थाओं का निर्माण वे करना चाहते हैं, वे कांग्रेस तथा शासन की इस परिलक्षित समाज-रचना से किस हद तक भिन्न या समान हैं। शायद उसका सबसे उत्तम तरीका यह होगा कि सर्वोदय के माननेवाले स्पष्ट रूप से बता दें कि उनके लक्ष्य क्या हैं और इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए समाज को किन-किन अवस्थाओं से गुजरना होगा?

अगले कुछ पृष्ठों में समिति ने यही बताने का यत्न किया है। इसका आशय कोई यह न समझे कि यह वक्तव्य शासन द्वारा तैयार की गयी दूसरी पंचवर्षीय योजना का स्थान ले सकता है, न यह कोई सर्वोदयी योजना की व्यवस्थित रूपरेखा ही है। सच तो यह है कि सर्वोदयी व्यवस्था में किसी ऐसी घड़ी-घड़ाई (साँचे में ढली हुई) योजना के आधार पर जीवन नहीं बनाया जा सकता। सर्वोदय एक विकासशील आदर्श है। [illegible]से किसी ढाँचे में नहीं बैठाया गया है। अगर हम चाहते हैं कि वह [illegible]र और जड़-वस्तु न बन जाय, बल्कि ऐसी शक्ति का काम दे, जो अन्दर से हमको और हमारी संस्थाओं के वर्तमान रूप को बदलकर

उन्हें सत्य और अहिंसा से अनुप्राणित करता रहे, यही उचित होगा कि वह इस प्रकार का जड़-पन्थ न बने।

इसलिए सर्वोदयी योजना मे कोई ऐसी रेखाकृति देखने का प्रयास न करे। विद्यमान प्रयत्न केवल प्रारूप मात्र है। इसका आशय यही है कि पाठक के सम्मुख सर्वोदय अधिक स्पष्ट रूप से आ जाय। उसे यह विदित हो जाय कि 'सर्वोदय-नियोजन' के आधारभूत सिद्धान्त क्या हों, सर्वोदयी समाज-व्यवस्था स्थापित करने के लिए कौन-कौनसे उपाय और कार्यक्रम हो सकते है तथा समाज को किन-किन अवस्थाओ मे से इसके लिए गुजरना होगा। यह मसविदा हम इस आशय से भी प्रकाशित कर रहे है कि सर्वोदय और सयोजन के अध्ययनशील जन इसे पढकर हमें अपने सुझाव तथा सशोधन लिख भेजने का कष्ट करे, ताकि इस प्रकार के सशोधन और सुझावो से लाभान्वित होकर आवश्यक सुधार-सशोधन के उपरान्त इस सयोजन को अन्तिम रूप दिया जा सके।

समिति गाधी-विचार-परिषद् और उसके कार्यकर्ताओ के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करना चाहती है। उन्होने जो सहयोग आवश्यक सामग्री एकत्र करने तथा मसविदा तैयार करने मे दिया, उसीके फलस्वरूप इतने कम समय मे यह पुस्तिका हम प्रकाशित कर पाये है।

शंकरराव देव
सयोजक,
सर्वोदय-योजना-समिति

०

प्रास्ताविक

तारीख ३० जनवरी १९५० को "सर्वोदय योजना के सिद्धान्त" पहले-पहल प्रकाशित किये गये थे। इसे पाँच वर्ष से भी अधिक हो गये। इसके बाद बहुत-सी घटनाएँ हो गयी, जिनके कारण अब जरूरी हो गया है कि सर्वोदय-योजना के इन सिद्धान्तों को एक बार फिर से दोहरा दिया जाय, और उस पुस्तिका में पाँच वर्ष पहले लक्ष्य-सिद्धि के लिए जो कदम बताये गये थे, उन पर हम फिर से विचार कर लें। अगर आवश्यक हो, तो उनमें संशोधन-सुधार भी कर लें। यह सच है कि अनपेक्षित हलको से भी उस पुस्तिका में प्रतिपादित सिद्धान्तों का स्वागत हुआ है। साथ ही यह भी सच है कि उसके प्रकाशन के बाद जो चर्चाएँ और मथन हुआ, उनसे प्रकट हुआ कि कुछ समस्याओं और भागों का वर्णन जड़ तक पहुँचकर अधिक गहराई से किया जा सकता था। ऐसे बहुत-से मुद्दे थे, जिनका विवरण अधिक विस्तृत और स्पष्टता के साथ किया जाता, तो अच्छा होता।

सबसे बड़ी और महत्त्वपूर्ण बात, जिसके कारण इन सिद्धान्तों और कार्यक्रमों पर पुनर्विचार करना आवश्यक हो गया, है भूदान-यज्ञ और उसकी सहायक प्रवृत्तियाँ। इनके कारण प्रचलित अर्थ-व्यवस्थाओं और सामाजिक सम्बन्धों की बुनियाद की तरफ हमारा ध्यान सबसे अधिक आकृष्ट और केन्द्रित हुआ है। हम महसूस करने लगे हैं कि शान्तिपूर्ण और अहिंसात्मक तरीकों से इनमें तत्काल परिवर्तन करना क्यों जरूरी है। भूदान-यज्ञ की हलचल ने हमारे सामने इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण पेश कर दिया, यदि प्रमाण की जरूरत रही हो, कि अहिंसात्मक प्रक्रिया द्वारा किस प्रकार [illegible] की सोयी हुई विवेक-बुद्धि को जाग्रत किया जा सकता है और [illegible] और कानून के लिए ठहरे या दण्डशक्ति का सहारा लिये, [illegible]

योजना की दलील है कि "जब तक उत्पादन नही बढ़ेगा, उद्योगों मे काफी धन नही लगाया जायगा, तब तक राष्ट्र की आय न बढेगी। इसी प्रकार औद्योगीकरण के बगैर विकास असंभव है। फिर औद्योगिक विकास भी तभी संभव होगा, जब पहले भारी-भारी और बुनियादी उद्योगों को प्राथमिकता दी जायगी। क्योकि इनकी मदद से राष्ट्र को वे सब विविध प्रकार के यन्त्र उपलब्ध हो जायँगे, जो जनता की जरूरत की चीजे बनाने के लिए आवश्यक है। किन्तु जब तक यह सब यत्र-सामग्री उपलब्ध नही हो जाती, देश को अपनी दैनिक जरूरत की चीजो के लिए ग्रामोद्योगों पर ही मुख्यतया निर्भर रहना होगा। क्योकि इनके लिए बहुत अधिक लागत-धन पूंजी की जरूरत नही होती और फिर भी इनमे बहुत अधिक मनुष्यो को रोजगार दिया जा सकता है। इस प्रकार तेजी से औद्यो ीकरण द्वारा ग्रामोद्योगों और छोटे उद्योगों के विकास तथा विविध प्रकार के निर्माण-कार्यों द्वारा अनुमान किया गया है कि एक करोड़ और अधिक मनुष्यो को काम दिया जा सकेगा।"

उपर्युक्त कथन से अब किसीके दिल मे सन्देह न रहना चाहिए कि शासन निश्चय कर चुका है कि देश मे वह किस प्रकार की अर्थ-व्यवस्था कायम करना चाहता है। वह ऐसी समाजवादी व्यवस्था होगी, जिसके अन्दर तेजी से औद्योगीकरण होगा, भारी-भारी उद्योगों को प्राथमिकता और प्रधानता दी जायगी और बीच के संक्रमण-काल मे मदद के तौर पर ग्रामोद्योगों का उपयोग कर लिया जायगा। इसलिए सर्वोदयी समाज-व्यवस्था की स्थापना करने की इच्छा रखनेवालो के लिए अब यह आवश्यक हो गया है कि वे भी देश के सामने सर्वोदयी समाज-रचना तथा अर्थ-व्यवस्था कैसी होगी, इसकी रूपरेखा पेश कर दे और उस तक पहुँचने के लिए क्या-क्या कदम उठाने होंगे, यह भी बता दे।

एक बात और है। यदि शासक दल ने विकेन्द्रीकरण की ओर ठोस और उद्देश्यपूर्ण कदम बढ़ाने की नीति न अपनायी गयी, तो दूसरी पंचवर्षीय योजना में जिस विस्तार और भारी औद्योगीकरण का जिक्र है,

उससे हमारे देश मे एक नयी चीज का—सत्ता और अर्थ के घने केन्द्रीकरण का—सूत्रपात हो जायगा। समाजवाद के माननेवालो मे एक दल ऐसा भी है, जो न केवल यह मानता है कि समाजवाद और केन्द्रीकरण साथ-साथ रह सकते है, बल्कि वह मानता है कि समाजवाद को सफल बनाने के लिए केन्द्रीकरण आवश्यक भी है। परन्तु सर्वोदय मे सत्ता के ऐसे अधिकाधिक केन्द्रीकरण के लिए—चाहे वह राज्य के हाथों मे ही हो—स्थान नही है। वह सत्ता के और उत्पादन तथा वितरण के साधनों के विकेन्द्रीकरण मे विश्वास करता है। वह जिस उद्योग-पद्धति की कल्पना करता है, उसके अन्दर जरूरत के लायक उत्पादन होगा और सबके लिए रोजगार होगा। सर्वोदय मे मुट्ठीभर उद्योग-सचालको अथवा राज्य के इने-गिने नौकरों के हाथो में स्वामित्व और सत्ता केन्द्रित नही होगी। सर्वोदय मानता है कि जब तक प्रत्येक मनुष्य के लिए रोजगार का प्रबन्ध नही हो जायगा, केवल राष्ट्र की आय के बढ़ जाने मात्र से व्यक्तियो की आय अपने-आप नही बढ़ जायगी। देश मे अन्धाधुन्ध औद्योगीकरण को वह उचित नही मानता। इससे तो मुट्ठीभर लोगों के हाथो में सर्वसाधारण पर सत्ता चलाने का अधिकार मात्र आ जायगा। वह चाहता है कि सर्वसाधारण के हितार्थ उद्योगो की पद्धति मे ही क्रान्ति करने की जरूरत है।

दूसरी पचवर्षीय योजना की अपेक्षा है कि सर्वसाधारण को जरूरत की चीजें मुहैया करने मे ग्रामोद्योग महत्त्वपूर्ण भाग अदा करे। इसके लिए वह महसूस करती है कि उत्पादन का एक सुव्यवस्थित कार्यक्रम भी बना लिया जाना चाहिए। इन ग्रामोद्योगो के उत्पादन की पद्धतियो एव ओजारों मे सुधार करने के लिए तथा ग्रामोद्योगो और छोटे उद्योगो द्वारा उत्पादन को सगठित करने के लिए उसके अन्दर दो अरब रुपये मजूर किये गये है। परन्तु यह कोई विशेष बात नही है। पहली पंचवर्षीय योजना मे उत्पादन बढाने का जो कार्यक्रम बनाया गया था, उसका यह विस्तार मात्र है। इस कथन के महत्त्व को ठीक तरह से समझने और

मूल्यांकन करने के लिए पिछले योजना-काल में सामान्यतया उत्पादन को बढ़ाने के लिए अखिल भारत खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड तथा अन्य बोर्डों को जो सहूलियतें दी गयी थीं और उनको जो अनुभव हुए थे, उसीको आधार मानना होगा।

इन बोर्डों की स्थापना और उनको मिले अनुभवों से कुछ-कुछ यह भी पता लगता है कि खादी और ग्रामोद्योगों तथा ऐसी ही अन्य प्रवृत्तियों के लिए योजना-आयोग और शासन के दिल में कितनी गुंजाइश है। अखिल भारत खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड की स्थापना को तीन वर्ष हो चुके हैं। इसी प्रकार हाथ-करघा बोर्ड, नारियल-तन्तु बोर्ड, केन्द्रीय तिलहन कमेटी, दस्तकारी बोर्ड रेशम बोर्ड आदि भी करीब-करीब इतने ही समय से काम कर रहे हैं। इनके कामों की पद्धतियों में कई दोष हैं। जैसे एक ही काम दो-दो संस्थाओं को दे दिया गया है अथवा दो संस्थाओं के बीच काम का बँटवारा इस प्रकार कर दिया गया है कि वे आपस में टकराती हैं और परिणाम कुछ नहीं निकल पाता। उदाहरणार्थ, अखिल भारत खादी ग्रामोद्योग बोर्ड का घानी-विभाग और केन्द्रीय तिलहन कमेटी का काम लगभग एक-सा ही है। इसी प्रकार हाथ-करघा बोर्ड और अखिल भारत खादी बोर्ड के कामों में कोई खास अन्तर नहीं है। दोनों को हाथ-करघों और बुनकरों—रेशम के बुनकरों—का भी विचार करना होता है।

परन्तु इस प्रकार एक काम के लिए दो-दो संस्थाओं का स्थापन और उनके बीच आवश्यक सहयोग का न होना, केवल यही कठिनाई नहीं है। असली और मुख्य कठिनाई तो यह है कि इनके पीछे कोई निश्चित नीति नहीं है। इधर रेशम बोर्ड की स्थापना कर दी गयी है और दूसरी तरफ रेशम के नये-नये कारखाने खोलने दिये जा रहे हैं। एक तरफ चावल की हाथ-कुटाई के उद्योग की जाँच करने के लिए एक कमेटी की स्थापना हो जाती है और साथ ही दूसरी तरफ तीन-चार हजार चावल छोलने की मशीनें लगाने की इजाजत दे दी जाती है। एक तरफ अखिल भारत

खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड से कहा जाता है कि वह बैलघानी का प्रचार करे और दूसरी तरफ बड़ी सख्या मे तेल की मिले स्थापित करने की इजाजत दे दी जाती है। इन सब बातों से मनुष्य इसी नतीजे पर वरबस पहुँचता है कि इन सस्थाओ को यह जो मदद दी जा रही है, वह केवल तात्कालिक है। उसका उद्देश्य केवल इतना है कि बेकारी के बढ़ने मे कुछ रुकावट हो जाय तथा मिलो और कारखानो द्वारा बनायी जानेवाली चीजो की जहाँ कमी हो, उसकी कुछ पूर्ति मात्र हो जाय। इस मदद के पीछे कही यह दिली कोशिश नही दिखाई देती कि इन छोटे-छोटे उद्योगो मे काम मे लिये जानेवाले औजारो मे सुधार हो, ताकि वे अधिक अच्छी तरह काम देकर उत्पादन बढा सके। अथवा यह कि विकेन्द्रित उद्योग-पद्धति द्वारा उत्पादन का सगठन किया जाय।

इस प्रकार खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड को जिन कठिनाइयो का सामना करना पड़ा है, उनसे यह स्पष्ट है कि जब तक विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था के लिए आवश्यक परिस्थिति उत्पन्न न होने देनेवाली अर्थात् विरोधी अथवा लापरवाही भरी नीतियाँ जारी रहेगी, तब तक केवल आर्थिक सहायता से कोई विशेष लाभ नही हो सकता। इसलिए जब तक प्रत्यक्ष शासन की उद्योग-नीति मे स्पष्ट परिवर्तन नही हो जाता, विकेन्द्रित अर्थ-रचना का प्रतीक, खादी, सफल नही हो सकती।

इसी प्रकार देश के ग्रामीण जीवन को पुन सगठित करने के उद्देश्य से जारी की गयी योजनाओ का जो अध्ययन करना चाहते है, उनके लिए सामूहिक विकास-योजनाएँ और राष्ट्रीय विस्तार-क्षेत्र भी उतने ही महत्त्वपूर्ण है। इन तमाम योजनाओ का उद्देश्य यह होना चाहिए कि समाज की निम्नतम श्रेणी के लोगो को लाभ पहुँचे। इन योजनाओ का प्रारम्भ भी ऐसे ही क्षेत्रों मे होना चाहिए, जिससे इस प्रकार के लोगो को उनका लाभ मिल सके। फिर इन योजनाओ की मातहत जो सहायताएँ दी जाती है, उनकी शर्ते भी इस उद्देश्य को पूरा करनेवाली हो, जिससे गरीब-से-गरीब आदमी उनसे लाभ उठा सके। अगर इन बातों का खयाल नही

रखा जायगा, तो इन योजनाओं का लाभ मुट्ठीभर आदमियों तक ही सीमित रह जायगा, जो उस क्षेत्र मे आम जनता की तुलना में साधन-संपन्न माने जायँगे।

सामुदायिक विकास-योजनाओं का कार्य जिस प्रकार चल रहा है उसे देखते हुए यह नही कहा जा सकता कि उनसे ग्रामवासियों के निम्न-स्तरीय समुदाय को कुछ विशेष लाभ पहुँच रहा हो। इसमे सन्देह नही कि इन योजनाओ के चलते बहुत लोगो के लिए धन्धे की व्यवस्था हो पायी है और बहुत से लोगों को भिन्न-भिन्न प्रकार से लाभ पहुँचा है, किन्तु विकास-क्षेत्रों मे व्याप्त विषमता मे कमी नही आयी है। इस बात की भी आशंका है कि विकास-क्षेत्रो मे विशिष्ट वर्गों की स्थिति और सुदृढ हो जाय। इसका निवारण तभी हो सकता है, जब कि भूमि पर सामूहिक स्वामित्व हो तथा ऐसे कार्यक्रम अपनाये जायँ और सहायता आदि की ऐसी विधि काम मे लायी जाय कि समाज के निम्न-स्तरीय वर्ग को भी उससे लाभ पहुँचे।

ये तमाम कारण हैं और यह भी कि शासन द्वारा जारी की गयी योजनाएँ समाज को केन्द्रीकरण और हानिकर औद्योगीकरण की तरफ ले जानेवाली हैं, जिन्होने विकेन्द्रीकरण और सर्वोदय के माननेवालों के लिए यह लाजिमी कर दिया है कि वे भी अब साफ-साफ शब्दो मे अपने विचार समाज के सामने रख दे और अपने सिद्धान्तो के पक्ष में लोकमत को शिक्षित और सगठित करने में लग जायें।

◆

अनुक्रम

सर्वोदय-संयोजन

भाग पहला

: १ :

हाइड्रोजन बम आज एक अमंगल छाया के रूप मे संसार पर छाया हुआ है। इस अशुभ छाया के नीचे मानवता अत्यन्त भयभीत और चिन्ताग्रस्त जीवन बिता रही है।

आज का मानव इस बात पर गर्व अनुभव कर रहा है कि उसकी सभ्यता किस ऊँचाई तक पहुँच गयी है। सचमुच विज्ञान तथा यंत्रादि की प्रगति, उत्पादन की महान् गति और परिमाण तथा पश्चिम के खास-खास देशों का अपूर्व ऊँचाई को पहुँचा हुआ जीवन-मान चौंधिया देनेवाली चीजें हैं।

परन्तु यदि इस ऊपरी चमक-दमक को हटाकर देखा जाय, तो क्या आज का यह सभ्य और आगे बढा हुआ मानव हाथ में खूनी सोटा लेकर दौड़नेवाले पुराने जगली मानव से वास्तव मे कोई भिन्न प्राणी है? हाँ, सोंटे के स्थान पर आज उसके हाथ मे हम हाइड्रोजन बम जरूर देखते है। परन्तु केवल इतने से उसके स्वभाव मे कोई खास अन्तर नही आ गया है। वह तो आज भी अपने भाई के खून का उसी तरह प्यासा है।

आज ससार के महान् राष्ट्रो की चिन्ता का मुख्य विषय क्या है? यही कि किस प्रकार विज्ञान, नयी-से-नयी यान्त्रिक

प्रगति और अन्य साधनों का पूरा-पूरा उपयोग करके एक-दूसरे को नष्ट किया जाय। हाँ, अपने बचाव के लिए वे नाम जरूर सुरक्षा का लेते हैं। परन्तु सुरक्षा का नाम लेनेभर से उनकी हत्यारी प्रकृति में कोई अन्तर नहीं पड़ जाता। ज्यों-ज्यों मनुष्य अधिक सभ्य होता जाय, त्यों-त्यों वह अधिकाधिक भयग्रस्त होता जाय, यह इस सभ्यता की कड़ी-से-कड़ी निन्दा ही तो है।

आकाश में मनमाना संचार करनेवाला, दूर-दूर की वस्तुओं को टेलिविजन द्वारा प्रत्यक्ष आँखों के सामने उपस्थित कर देनेवाला और अणु का विस्फोट करने की क्षमतावाला मानव अगर इतना भी नही समझ पाया कि मनुष्यों की हत्या करना मानवोचित नही है, तो विज्ञान, यन्त्रशास्त्र आदि की इस प्रगति का क्या मूल्य है?

और इस विषय मे उन दोनों अर्थात् पश्चिमी और रूसी सोवियत सभ्यताओ में कोई अन्तर नही है, जो आज द्वेष और गुस्से से एक-दूसरे के आमने-सामने खड़ी है। आज अगर वे एक-दूसरे पर टूट नही पड़ रही हैं, तो इसका कारण यह नहीं कि किसीके भी दिल मे अपने दुश्मन के प्रति दया-भाव है, बल्कि यह है कि वे जानती हैं कि वे जिन शस्त्रास्त्रों को धारण किये हुए है, वे इतने भयंकर और नाशकारी हैं कि लड़ाई के बाद हारने और जीतनेवाले की हालत में भी कोई खास फर्क नहीं रह जानेवाला है।

संसार के राजनीतिज्ञ इस कोशिश में जरूर हैं कि आणविक युद्ध के प्रलयंकारी विनाश से संसार को बचाया जाय। ये यत्न अवश्य अच्छे हैं। परन्तु ये समस्या की जड़ तक नहीं पहुँच रहे

हैं। इसलिए इनसे कोई स्थायी हल मिलनेवाला नही है, शायद वे और भी अधिक भयंकर भ्रम साबित हों।

इस प्रकार आज सभ्यता एक बहुत बड़ी क्रान्ति मे से गुजर रही है, इसे सब महसूस करते है। अब तो प्रायः सारा ससार अनुभव करने लगा है कि विज्ञान और यंत्रशास्त्र की प्रगति के साथ-साथ मानव अगर अपनी नैतिक उच्चता न बढ़ायेगा, तो मानवता का विनाश निश्चित है। इसलिए अब ससार के सामने मुख्य समस्या राजनैतिक या आर्थिक नही, बल्कि विशुद्ध रूप से नैतिक है।

आज दोनों सभ्यताएँ—पूँजीवादी और साम्यवादी—भौतिक सुख-सामग्री की प्राप्ति के पीछे पड़ी हुई है। मनुष्य को सुखी बनाने के लिए यह सामग्री जितनी अधिक जुटाई जा सके, उसे दी जानी चाहिए। इस बात मे दोनो के बीच भेद केवल इस बात का है कि पूँजीवादी सभ्यता में जहाँ यह यत्न व्यक्ति करता है, वही साम्यवादी सभ्यता मे सामूहिक पुरुषार्थ पर विशेप भार दिया गया है। नि.सन्देह व्यक्तियो के बीच किसी चीज के लिए कुत्तों की-सी लड़ाई हो, इसके बजाय यह अच्छा है कि सब मिलकर समूह के सुख के लिए यत्न करे। परन्तु यत्न चाहे व्यक्ति करे या समाज, लक्ष्य तो वही रहता है। इसलिए वास्तव में बुराई गलत लक्ष्य ही है।

इस बात से शायद ही कोई इनकार करेगा कि मनुष्य केवल इंद्रियों की गठरी नही है और मनुष्य-जीवन का आदर्श केवल इन इंद्रियों के सुखों की प्राप्ति ही नहीं हो सकता। वह इससे कही भिन्न हो सकता है। परन्तु कुछ इने-गिने साफ दृष्टि और साफ

दिमागवाले लोग कितनी ही चिल्लाहट मचाते रहे, दोनों सभ्यताओं का लक्ष्य अगर पूरी तरह नही, तो मुख्यत: इन इंद्रिय-सुखों की तृप्ति ही है। विषय-भोग और मनुष्य की इंद्रिय-लोलुपता बढानेवाली 'सांस्कृतिक' प्रवृत्तियाँ ही, अगर एकमात्र नही तो अधिकांश में, जीवन का लक्ष्य बन गयी है। दोनों सभ्यताएँ भौतिक सुख-सामग्री बढ़ाकर मनुष्य को उसका गुलाम बनाने के यत्न में लगी हुई हैं। अपनी जरूरतो को उत्तरोत्तर बढाते रहना उनका लक्ष्य है। अगर इस पागलपन पर वे कभी कहीं कोई नियन्त्रण रखने का यत्न करती है, तो उसे और अधिक गहरा (पागल) बनाने के लिए अर्थात् केवल शस्त्रास्त्रों का उत्पादन बढ़ाने के लिए, जो कि इससे भी बड़ा एक दूसरा पागलपन है।

इस दौड़ ने आज के मानव को हाइड्रोजन बम तक पहुँचा दिया है, जो उसका संपूर्ण नाश करने के लिए तैयार बैठा है। अत: कम-से-कम अब तो मनुष्य अपनी इस पागलपन की दौड मे रुके और अपने जीवन के असली लक्ष्य पर विचार करे।

हम मानते हैं कि मनुष्य की भौतिक जरूरतें पूरी की जानी चाहिए—और अच्छी मात्रा में पूरी की जानी चाहिए। परन्तु मनुष्य यह तो समझे कि इनका पूरा करना, इन्हें बेकार बढाते रहना और फिर उनकी पूर्ति मे निरंतर लगा रहना तथा इंद्रियों की तृप्ति के पीछे दौड़ते रहना—बस, केवल यही तो मानव-जीवन का लक्ष्य नही हो सकता। इन इंद्रियों की कभी तृप्ति भी होनेवाली है? यों तो मनुष्य दौड़ता ही रहेगा, उसे कभी विश्रान्ति नही मिलनेवाली है। न कभी वह अपने-आपको रोक

सकेगा और न उसे कभी कोई सुख मिलेगा। इसका नतीजा यह होगा कि यह भोगलिप्सा अन्य तमाम मानवोचित उदात्त प्रवृत्तियों को खा जायगी। उनका खग्रास ग्रहण हो जायगा। उपभोग्य वस्तुओ को पैदा करो और उनको प्राप्त करो, यही एकमात्र प्रवृत्ति या गुण---अगर यह गुण कहा जा सके---ससार मे रह जायगा और मनुष्य के दूसरे सब शानदार सद्‌गुण और शुभाकाक्षाएँ सुप्त और अविकसित ही रह जायँगी। उनका विकास कुण्ठित हो जायगा। मनुष्य एकागी वन जायगा और इस सभ्यता मे बुद्ध, ईसा, मुहम्मद अथवा गांधी को कोई नही पूछेगा।

इसलिए आज मनुष्य को आत्मसयम और अपनी आत्मा की खोज की यात्रा फिर से शुरू करनी है। जीवन-यात्रा के लिए भौतिक वस्तुओ का अपने स्थान पर मूल्य अवश्य हैं। लेकिन मनुष्य को जरा गहराई से अपने अन्दर पैठकर अपने असली स्वभाव की खोज करनी चाहिए, सूक्ष्म प्रवृत्तियो का अध्ययन कर कूडे-करकट को निकाल बाहर करना चाहिए और आत्मा का विकास करना चाहिए। इस आत्मशोधन और आत्मसंयम के रास्ते अलग-अलग हो सकते हैं। परन्तु हर हालत मे मनुष्य इन इन्द्रियो की गुलामी से और आत्मा को सज्ञाशून्य बना देनेवाली जड़ता की पूजा से तो अवश्य ही अपने-आपको मुक्त करे। जिस मात्रा मे वह अपने-आपको इन गुलामियों से मुक्त करेगा, उस मात्रा मे उसे अवश्य सफलता मिलेगी। तव वस्तुओं के उत्पादन और उपार्जन के मोह संस्कृति पर हावी नही हो सकेंगे, वल्कि उसकी व्यापक योजना में वे अपने लिए उचित

स्थान ढूँढ़ लेंगे। यह पागल-दौड़ बंद हो जायगी और जीवन का नया दर्शन मनुष्य-जाति की आँखो के सामने खड़ा हो जायगा। मतलब यह कि वर्तमान सभ्यता में ब्रह्मचर्य और आत्मज्ञान को प्रतिष्ठित करने की सबसे भारी जरूरत है।

विज्ञान के इस युग मे सबने मानो यह मान रखा है कि विज्ञान का एकमात्र उद्देश्य और उपयोग यही है कि मनुष्य अपनी रहन-सहन लगातार ऊँची करता जाय और विज्ञान उनकी पूर्ति के लिए तेजी से वस्तुएँ पैदा करता रहे। वेशक, विज्ञान का उपयोग मनुष्य-समाज के लिए आवश्यक वस्तुएँ निर्माण करना जरूर है और यह भी है कि दु.ख और बीमारियों से मनुष्य को छुटकारा दिलाने मे उसकी मदद करे। परन्तु विज्ञान को मनुष्य की संस्कारशून्य, कुरुचिपूर्ण और कभी तृप्त न हो सकनेवाली लालसाओ की तृप्ति करनेवाली भोग-सामग्री के उत्पादन के काम में ही तो नही लगाया जा सकता। मनुष्य का नैतिक विकास और विज्ञान की प्रगति साथ-साथ नहीं चल सकती, ऐसीबात नही है। सच तो यह है कि जब तक विज्ञान को नीति और मनुष्य-हृदय की उदात्त भावनाओं का सहायक नही बनाया जायगा, जब तक सत्य, प्रेम, दयालुता और मानव-जाति के कल्याण के लिए ही उसका उपयोग सीमित नही कर दिया जायगा, वह मानव-जाति के लिए एक अभिशाप और सम्पूर्ण नाशकारी सिद्ध होगा। विज्ञान की सफलता, सार्थकता और पूर्णता आत्मज्ञान के साथ रहने ही मे है।

आज भारत मे हम एक नवीन जीवन के द्वार पर खड़े है। ऐसा सुअवसर बहुत कम राष्ट्रों को मिलता है, क्योंकि हमें

लगभग शून्य मे से नव-निर्माण करना है। आज हम जो कदम उठायेगे, जिस दिशा मे अपने कदम बढायेगे, वह हमारे राष्ट्र की आगे आनेवाली असंख्य पीढियो की जीवन-दिशा का निर्णय करनेवाला है। इसलिए इस समय हमे खूब गहराई से सोचकर ही बहुत विचारपूर्वक अपने मार्ग का निर्णय करना चाहिए।

हमारे लिए यह अत्यन्त सौभाग्य की वात है कि हमारी सस्कृति ने हमेशा बाहरी चमक-दमक की अपेक्षा आन्तरिक विकास पर, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यो पर ही बल दिया है। परन्तु पश्चिम ने भौतिक विषयों मे इतनी अधिक और प्रभावशाली प्रगति कर ली है और इस विषय में हम इतने दरिद्र रह गये हैं कि कभी-कभी बड़ा भय होता है कि पश्चिम को देखकर हम कही भटक न जायें। इसमे कोई शक नही कि आज हमारे सामने सबसे बड़ा काम जनता का जीवन-मान ऊँचा उठाना है। परन्तु यह करते हुए हमे इस बात का खूब ध्यान रखना है कि हमारा लक्ष्य कही आँखो से ओझल न हो जाय। यह काम व्यक्तियों की आय पर कानूनी बन्दिशे लगाकर नही—यद्यपि सामाजिक न्याय प्रस्थापित करने के लिए वह भी आवश्यक होगा—बल्कि जनता को शिक्षित करके करना होगा। साथ ही जो व्यक्ति विशेष रूप से अच्छी जगहों पर है, उनको स्वेच्छापूर्वक अपनी जरूरते घटाकर अनुकरणीय उदाहरण भी पेश करने चाहिए। मतलब यह कि प्रचार और प्रत्यक्ष उदाहरण द्वारा हमे जीवन का एक ऐसा नमूना विकसित करना है, जिसे आगे चलकर सारा समाज साधारण रूप मे स्वीकार कर ले।

उत्तरोत्तर अधिकाधिक उत्पादन और उपार्जन की यह दौड़

मानव-मूल्यों के लिए इतनी विनाशकारी, मनुष्य-जाति के लिए इतनी दुःखदायी और लड़ाई-झगड़े पैदा करनेवाली नहीं होती—सभ्यता के लिए भी वह इतनी खतरनाक साबित नहीं होती, अगर इसमें भाग लेनेवाला हर पक्ष दूसरों को आवश्यक मात्रा मे ये चीजें मिल रही है या नही, इसकी चिन्ता बगैर किये खुद अकेले ही अधिक-से-अधिक हड़पने की हवस न करता।

इस गर्दन काटनेवाली प्रतियोगिता की तह मे शायद यह सिद्धान्त रहा है कि अगर हर मनुष्य अपने भले की चिन्ता कर लेगा, तो स्वभावत. सारे समाज की भलाई अपने-आप किसी रहस्यमय ढंग से हो ही जायगी। परन्तु दुःख है कि इतिहास इस सिद्धान्त के विरोध मे जाता है।

सच पूछिये, तो एक मनुष्य की भलाई दूसरे मनुष्य के लिए हानिकर न होनी चाहिए। सचमुच एक की भलाई में सबकी भलाई होनी ही चाहिए। इसी प्रकार सबकी भलाई में व्यक्ति की भी भलाई होनी ही चाहिए। इस तस्वीर की सुन्दरता को बिगाड़नेवाली तथा समाज मे प्रत्यक्ष झगड़े पैदा करनेवाली चीज तो खानगी—निजी संपत्ति जैसे गलत मूल्यो का प्रादुर्भाव है। जरूरत इस बात की है कि मानव-जाति की एकता स्थापित कर और गलत मूल्यों को हटाकर इन झगड़ों को मिटाया जाय।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में पैदा होता और समाज में ही काम करता है। वास्तव में समाज उसका जीवन-सर्वस्व है। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में हजार तरह से उसे समाज का सहयोग और मदद मिलती है। इसके बगैर उसका जीवन असंभव हो जाय। कहीं किसी तरह जिन्दा रहा भी, तो

वह एक निरा पशु बन जाय। परन्तु आश्चर्य यह है कि जीवन-संघर्ष में हर मनुष्य केवल अपना और अपने छोटे-से परिवार का ही खयाल रखता है और इस जीवन-संघर्षरूपी युद्ध के परिणाम-स्वरूप उसे जो फल मिलता है, उसे वह अपनी निजी संपत्ति ही मान लेता है, जब कि वास्तव मे समाज के सहयोग से ही वह यह सफलता प्राप्त कर पाता है और न्यायत. इस फल का अधिकारी सारा समाज होता है। मनुष्य के जीवन मे यह अजीव बात न जाने कव से चली आ रही है और वह आज भी है। एक तरफ वह समाज के साथ रहता है, उसके सहयोग से जीता है और दूसरी तरफ वह केवल अपने मतलब को देखता रहता है।

दूसरे प्राणियो के जीवन मे हम यह नही पाते। कई जानवर झुण्ड बनाकर रहते हैं। दीमक, चीटियाँ, मधुमक्खियाँ, इनका अपना एक खासा विकसित सगठन होता है, जिसके अन्दर व्यक्ति और समाज का जीवन एक-दूसरे के लिए अर्पित-सा होता है। यह उच्च नैतिक सामाजिकता उनके अन्दर जन्मजात होती है।

मनुष्य-समाज इनसे कही अधिक विकसित है। अतः जो गुण जन्मजात वृद्धि द्वारा प्राणी जीवन मे विकसित नही हो सकते, उनका विकास मनुष्य को अपने सस्कारो—नैतिक प्रयास—द्वारा करना चाहिए। मनुष्येतर प्राणी अपना विकास एक हद तक ही कर सकते है। उसके बाद अधिक ऊँचा उठना नैतिक प्रयास के वगैर संभव नही है। किन्तु यह तो मनुष्य को करना ही है। आज उसके लिए यह जीवन-मरण का प्रश्न वन

गया है। क्योंकि अब मनुष्य-समाज ऐसी अवस्था को पहुँच गया है कि यदि व्यक्ति समाज के लिए जीना नहीं सीखेगा और समाज व्यक्ति के पूर्ण विकास का ध्यान न रखेगा, तो व्यक्ति और समाज, दोनों का नाश निश्चित है।

मानव-समाज में परिवार शुरू से एक ऐसी इकाई रहा है, जिसके अन्दर पारस्परिक सहयोग का यह नियम काम करता है। इसका आधार विशुद्ध प्रेम है। इसके अन्दर परिवार का प्रत्येक व्यक्ति मानता रहा है कि परिवार की संपत्ति पर उसके प्रत्येक सदस्य का समान अधिकार है। परन्तु इसकी तह में काम करनेवाला हेतु कोई नैतिक नही, नैसर्गिक नियम ही है। शुरू-शुरू में परिवार शायद छोटा ही रहा। धीरे-धीरे उसका आकार बढा। बाद में इस पारिवारिक सहयोग की सीमाएँ विकसित होती गयी और विशेष प्रसंग या विशेष हेतु से सहयोग करने की वृत्ति काफी बड़े क्षेत्र में काम करने लगी। परन्तु एक तो सहयोग की यह भावना संपूर्ण जीवन को व्याप्त न कर सकी और दूसरे, इस सहयोग का भी हेतु यही रहा कि उसके फल का उपभोग दूसरे नही, केवल सहयोगी समूह ही करे। मनुष्य का नैतिक और सास्कृतिक विकास तो तब हुआ माना जायगा, जब यह पारस्परिकता की भावना सारी मनुष्य-जाति में फैल जायगी। इसका मूल आधार प्रेम और यह ज्ञान होगा कि 'समस्त मानव-समाज एक विशाल परिवार है और यह कि चूंकि तमाम वस्तुओं के उत्पादन एव उपार्जन मे समस्त समाज सहायक होता है, अतः इन पर किसी एक या इने-गिने व्यक्तियों का नही, सारे समाज का स्वामित्व

होगा' और उनका उपभोग समाज के सब सदस्य न्यायरूप से समानतापूर्वक करेगे।

पुराने जमाने मे मानव-समूह एक-दूसरे से आज की अपेक्षा जरा दूर-दूर रहा करते थे। इस कारण उनके बीच सहयोग और संघर्ष की भी सभावनाएँ कम ही रहती थी। परन्तु अब विज्ञान ने मनुष्यों को एक-दूसरे के इतना नजदीक लाकर रख दिया है कि मानो हम सब एक-दूसरे के पडोसी बन गये हैं। इसलिए इस युग मे सहयोग और सघर्ष, दोनों ससारव्यापी बन गये है। ऐसी सूरत में अब मनुष्य को चुनाव करना है कि वह समस्त ससार मे सहयोग चाहता है या ससारव्यापी युद्ध। दूसरे शब्दो मे हम कह सकते है कि अब सभ्यता के रहने या एकदम मिट जाने का समय आ गया है।

इस चुनाव मे भी विज्ञान हमारी—मनुष्य की—मदद कर सकता है। हर चीज का बॉटकर उपभोग करने से मनुष्य नैतिक दृष्टि से ऊपर ही उठता है। हॉ, जब भोग-सामग्री सबके लिए पर्याप्त नही होती, तब जरूर मनुष्य को कुछ भय-सा रहता है। परन्तु अब तो ऐसी कोई बात नही। खूब उत्पादन होता है। सबको सुखी बनाया जा सकता है। अब मनुष्यों को इन चीजो के लिए कुत्तो की तरह लड़ने की कोई जरूरत नही रह गयी है। अब तो अगर मनुष्य अधिक लालच करना छोड दे और अपने भाइयो को देकर चीजों का उपभोग करना सीख जाय, तो मनुष्य-जाति के इतिहास मे नया और सुन्दर सुखकर अध्याय शुरू हो सकता है।

इस प्रकार अब बाहरी और भीतरी विकास अर्थात्

वैज्ञानिक प्रगति तथा नैतिक कर्तव्य हमें एक ही रास्ते पर, एक ही लक्ष्य की ओर ले जा रहे हैं, यही कि हमें अब सहयोग का पाठ पढना चाहिए—इस पृथ्वी पर सब मनुष्यो को हिल-मिलकर, आपस मे बाँटकर उपभोग करना चाहिए।

एक तरफ नीति-धर्म चाहता है कि मनुष्य को अपने विकास की अन्तिम मंजिल तय करने का निश्चय कर लेना चाहिए। अर्थात् सबकी भलाई में अपनी भलाई देखकर वैसा अपना जीवन बना लेना चाहिए।

दूसरी तरफ मनुष्य-समाजों के बीचवाले ये स्वार्थों के सघर्ष अगर समाप्त नही होते हैं और सारे मानव-समाज में एक-दूसरे के कल्याण के लिए जीना हम नही सीख लेते, तो विज्ञान कहता है, मनुष्य-समाज सर्वनाश के लिए तैयार हो जाय।

'सह-अस्तित्व' की बात आजकल बहुत चल पड़ी है। परन्तु केवल सह-अस्तित्व से काम चलनेवाला नही है। ससार के राष्ट्र आज की भांति स्वार्थमय जीवन बिताते रहें तथा अपने लिए अलग-अलग सत्ता और संपत्ति बटोरते रहे और अपनी सीमा के अन्दर और प्रभाव-क्षेत्रो मे अन्याय, जुल्म और हत्याएँ करते रहे—इस तरह 'सह-अस्तित्व' का जीवन अब वे (ससार के राष्ट्र) बहुत अधिक दिन नही जी सकते। इस सह-अस्तित्व के जीवन मे राष्ट्रों के स्वार्थो के बीच सघर्ष बना ही रहनेवाला है और ऐसी सूरत मे तराजू के काटे पर शान्ति की रक्षा बहुत अधिक समय तक नही की जा सकती। इसलिए, आनेवाले महा-विनाश से संसार को बचाना है, तो 'सह-अस्तित्व' की अपेक्षा कोई अधिक ठोस आधार संसार को ढूँढना होगा। 'सह-अस्तित्व' ने शांति

बढ़कर हमे सहयोग की तरह और प्रेमपूर्वक बाँट-बाँटकर उपभोग करने की कला सीखनी होगी; अन्यथा परिणाम बुरा होगा। क्योंकि आखिर सह-अस्तित्व का आधार भी तो स्वार्थ ही है। यह कि जिसके पास जो कुछ है, उसे वह रखा रहे और हर राष्ट्र या व्यक्ति अपनी संपत्ति को बढ़ाता रहे, फिर दूसरे का जो कुछ भी हो। इसका परिणाम तो अन्त में सह-विनाश ही होगा। ससार को शान्ति तभी नसीब होगी, जब व्यक्ति की भाँति राष्ट्र भी अपने अन्य भाई राष्ट्रों के लिए त्याग करना सीखेंगे। अर्थात् भोग-सामग्री, सेवा और ज्ञान में दूसरे राष्ट्रों को हिस्सेदार वनायेंगे तथा उनकी जरूरतों का खयाल कर अपनी रहन-सहन को सादा वनायेंगे और अपनी जरूरतों को कम कर लेगे।

: २ :

प्रकट है कि ऊपर बताये सिद्धान्तो के आधार पर जिस समाज की रचना होगी, वह हमारे आज के इस समाज से बिलकुल भिन्न होगा। इस समाज की पूरी-पूरी कल्पना आज करना कठिन है, क्योकि हमारे साधन वहुत सीमित है। फिर भी यह तो सब मानेगे कि समाज का भला चाहनेवाले सभी स्त्री-पुरुषों को उसके बनाने में लग जाना चाहिए। इस नये समाज का मूल आधार प्रेम और लक्ष्य, सबका भला, सवका सुख—सर्वोदय होगा। यद्यपि पूरी नही, तो भी ऐसे समाज के स्वरूप की कुछ कल्पना तो हम जरूर कर सकते है।

सर्वसाधारण रूप में इस समाज में स्पष्ट ही सब स्वतत्र

होंगे और व्यक्तियों में अधिक-से-अधिक समता होगी। उसके अन्दर कोई वर्ग या जातियाँ न होंगी, अन्याय और शोषण न होगा और अपना पूरा-पूरा विकास करने के लिए हर आदमी को अवसर होगा। इस नये समाज का केन्द्र व्यक्ति होगा, परन्तु समाज-रचना का आधार स्वार्थ न होगा। अतः मनुष्य का विकास एकांगी नहीं, सर्वतोमुखी होगा। परिश्रम, कला और खेल, सब इस तरह ओत-प्रोत होंगे, जिससे इस समाज का मानव पूर्णतः विकसित नया व्यक्तित्व होगा।

अर्थ के क्षेत्र में जमीन सहित सारी सम्पत्ति पर स्वामित्व समाज का होगा और उसका उपयोग सम्मिलित रूप से सबके लिए होगा। पूंजीपति और मजदूर जैसे कोई भेद-भाव नही रहेंगे। इस कारण स्वभावतः मुनाफा, किराया, सूद, मजदूरी जैसे शब्दों का कोई अर्थ न होगा—वे कही सुनाई भी नही देंगे। हर आदमी अपनी शक्ति के अनुसार समाज के लिए काम करेगा और उसकी जरूरतों की पूर्ति समाज करेगा। परन्तु यह करते हुए समाज अपने अन्य सदस्यों की जरूरतों का भी खयाल जरूर रखेगा। ऐसे समाज में उत्पादन व्यापार-व्यवसाय के लिए नही, समाज की जरूरतों की पूर्ति के लिए होगा और उपभोग बाँट-बाँटकर होगा। कोई व्यक्ति अपने लिए अलग से सपत्ति इकट्ठी नही कर सकेगा, क्योंकि सारी सपत्ति का स्वामी समाज ही होगा और हर व्यक्ति को उसकी जरूरतों के अनुसार और उनके साथियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए ही मिलेगा। समाज भी अपने लिए अधिक नहीं, केवल अगली जरूरतों के खयाल से ही कुछ संग्रह रखेगा।

समाज अपना नियमन भी खुद ही करेगा। अर्थात् ऊपर से किसीका नियन्त्रण नही होगा या कम-से-कम होगा। जनता अपना प्रबन्ध खुद कर लिया करेगी। मतलब, सरकार की सत्ता और अधिकारो मे जमीन-आसमान का अन्तर हो जायगा। वह किसी पर जोर-जबरदस्ती नही कर सकेगी, क्योकि जोर-जबरदस्ती की जरूरत ही नही होगी। अगर कही होगी, तो वह प्रेम की होगी।

दूसरे शब्दों मे 'एञ्जील' के कथनानुसार तब शासन मनुष्यो पर नही, वस्तुओ पर होगा और शासन 'शासक' नही रहेगा, 'प्रबन्धक-संस्था' बन जायगा। शोषक और लालची समाज-रचना मे मनुष्य सत्ता अपने हाथ में इसलिए रखना चाहता है कि दूसरे मनुष्य उसकी स्वार्थ-साधना मे बाधा न पहुँचाने पायें। इसीका नाम 'सरकार' या 'शासन' है। किन्तु जिस समाज-रचना का आधार पारस्परिक सहयोग है, उसकेतअन्दर सारी सपत्ति समाज की होगी और लोग स्वेच्छापूर्वक आपस में बॉट-बॉटकर उसका उपभोग करेंगे। तब मनुष्यो पर हुकूमत चलाने की जरूरत ही नही रहेगी। उसमे केवल चीजो का प्रबन्ध करने की अर्थात् उनके उत्पादन और वितरण का नियमन करने की जरूरत रह जायगी।

इस व्यवस्था का सचालन करनेवाली राजनैतिक और अर्थसम्बन्धी सस्थाओं का स्वरूप क्या होगा, यह आज ठीक-ठीक नही कहा जा सकता। परन्तु एक वात निश्चित है और उसके सिवा कोई रास्ता नही दिखाई देता कि जिस समाज का आधार पारस्परिक सहायता होगी, जिसके अन्दर स्वतन्त्रता

और स्वायत्तता होगी, वह अपना काम छोटी-छोटी इकाइयों के रूप में ही उत्तम प्रकार से चला सकता है, फिर चाहे वह समाज गाँवों का हो या शहरो का। क्योंकि जिनको हम जानते है, उनकी सेवा करना या उनको अपना हिस्सेदार बनाना अधिक आसान होता है। बे-जाने-बूझे आदमियो के साथ—केवल कल्पना का—साझा या सहयोग मुश्किल हो जाता है। इसी प्रकार जब किसी दूर के केन्द्र से बहुसंख्यक मनुष्यो का शासन दूसरे के हाथों मे सत्ता सौंपकर होता है, तब वहाँ सच्ची स्वतंत्रता नहीं होती। वह सीमित होती है और वहाँ स्वतंत्रता को सदा खतरा ही रहता है, ऐसा समझना चाहिए। स्वतन्त्रता का सच्चा आनन्द तो तभी मिलता है और लोकतंत्र अच्छी तरह वहीं काम कर सकता है, जहाँ छोटे-छोटे जन-समाज अपना प्रबंध खुद करते है।

इसके मानी यह नहीं कि समाज की बड़ी इकाइयाँ होंगी ही नहीं या उनके अन्दर सहयोग नहीं होगा या वे हिल-मिलकर उपभोग न कर सकेंगी अथवा अपना प्रबन्ध खुद न कर सकेंगी। समाज की बड़ी इकाइयां तो होंगी। परन्तु वे सीढ़ियों की भांति एक के ऊपर दूसरी, इस तरह नहीं; बल्कि गांधीजी के सुन्दर शब्दों मे 'एक बिन्दु से फैलनेवाली समुद्र की लहरों की भांति एक-दूसरे से अधिक विशाल', इस तरह होंगी और अन्त मे वह अपने अन्दर सारे संसार को समा लेगी। किन्तु प्रारम्भिक इकाइयों के हाथों में अधिक सत्ता होगी और वे अधिक काम करेंगी। व्यापक अर्थात् बड़ी परिधिवाली संस्थाओं का काम होगा अन्दर के वृत्तों के बीच मेल बैठाना। तथापि ये सब वृत्त

और इनके अन्दरवाले मनुष्य एक-दूसरे के साथ प्रेम के बंधन में बँधे होगे। प्रत्येक व्यक्ति सारी मनुष्य-जाति के लिए और मनुष्य-जाति हर व्यक्ति के लिए जीयेगी।

खुद गाधीजी के शब्दों मे ही इस कल्पना को पढ़िये—

"इस रचना के अन्दर असख्य गाँव होंगे। ये एक ही बिन्दु के आसपास फैलनेवाले एक-से-एक बड़े वृत्त होंगे। जीवन एक पिरामिड नही होगा, जिसमे ऊपर की सारी इमारत का बोझा नीचेवाले स्तर पर आ जाता है।

"यह रचना तो महासागर की लहरो के वृत्त के जैसी होगी, जिसका केन्द्र-बिन्दु व्यक्ति होगा, जो गाँव के लिए और गाँव ग्राम-समूह के हितार्थ मिटने के लिए तैयार रहेगे। यहाँ तक कि सबका मिलकर एक सपूर्ण अभिन्न एकरस जीवन बन जायगा, जिसके अन्दर कोई किसी पर सत्ता के मद मे आक्रमण नही करेगा, बल्कि हर व्यक्ति नम्रतापूर्वक रहेगा और अपने को विशाल व्यापक समाज का एक अंग मानकर उसकी महत्ता का आनद उठायेगा।"

प्राथमिक इकाइयों का यह काम होगा कि वे अपने तमाम सदस्यो की भलाई का खयाल रखें, उनकी जरूरतों की पूर्ति हो जाया करे, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य सेवाओ का लाभ उनको मिलता रहे, खेती-वारी और उद्योगों की देखभाल ठीक-ठीक होती रहे। और अगर समाज में कही झगडे हो जायँ—जैसे कि परिवार के अन्दर भी कभी-कभी हो जाया करते हैं—तो सद्भाव-पूर्वक उनका भी निपटारा कर लिया करें। जगली जानवरो से समाज की रक्षा करें और अगर कही समाज-विरोधी तत्त्व पैदा

हो जायँ, तो तत्काल ऐसा प्रवन्ध कर दिया जाय कि वे समाज को हानि न पहुँचा सकें और उनके साथ ऐसा वर्ताव हो कि वे अपने वुरे मार्ग से हट जायँ। जहाँ तक सम्भव होगा, हर प्राथमिक इकाई अपनी आवश्यक जरूरतों की चीजें पैदा कर लिया करेगी। इससे उनकी स्वतन्त्रता की रक्षा होगी और अधिक व्यापक वृत्तो के साथ सहयोग आसान वन जायगा। कोई यह न समझ ले कि इतने छोटे समाज के अन्दर जीवन नीरस हो जायगा। इसके अन्दर भी विविधता और सांस्कृतिक जीवन का आनन्द लेने के लिए काफी अवकाश रहेगा। हाँ, वह जीवन सयमी जरूर होगा।

अनुभव यह है कि जव वड़े-वड़े यन्त्रों की सहायता से उत्पादन केन्द्रित कर दिया जाता है (चाहे उन यन्त्रों पर स्वामित्व व्यक्तियों का हो या समाज का), तो वहां सत्ता और संपत्ति का भी केन्द्रीकरण होने लगता है। शोपण और हुक्म चलाने की वृत्ति वढ़ती है। इसलिए नये समाज के अन्दर विकेन्द्रीकरण अधिक पसन्द किया जायगा। इसका मतलव यह नही कि किसीको पुराने जमाने के भद्दे औजारों से कोई विशेप प्रेम है, वल्कि इसमें समाज के विकास और कल्याण की और खासकर ऊपर वताये खतरों से बचने की दृष्टि है। विकेन्द्रित उत्पादन की पद्धति मे भी उत्तरोत्तर यन्त्रों का सुधार जरूर हो सकता है। वर्तमान समाज-रचना मे यह नहीं हुआ, इसका कारण यह रहा है कि विज्ञान और यन्त्रशास्त्र को मुनाफा-वृत्ति के अधीन और हिंसा का गुलाम वनकर रहना पड़ा है। मुनाफा और युद्ध के चाहनेवालों ने वड़े-वड़े यन्त्रों और केन्द्रित

उत्पादन की पद्धति को इसलिए पसन्द किया कि उसकी सहायता से उन्हे खूब मुनाफा मिला है और वे युद्ध के बड़े-बड़े यन्त्र-उपकरण बना सकते है। किन्तु यदि इसी विज्ञान और यन्त्रशास्त्र को शान्तिशील और शोषणरहित समाज-रचना की सेवा मे लगा दिया जायगा, तो निश्चय ही उनका विकास दूसरी प्रकार से होने लगेगा और उनकी सहायता से ऐसे यन्त्र अवश्य बनाये जा सकेंगे, जो विकेन्द्रित उत्पादन-पद्धति में आज की अपेक्षा कही अधिक अच्छा काम देंगे और उत्पादन भी बढ़ा देगे। इसमे विज्ञान के विकास के लिए भी पूरा-पूरा अवकाश है। यह इतिहास मे पहली बार मानवता की सच्ची सेवा के लिए विज्ञान का समर्पण होगा।

यन्त्रशास्त्र का एक और भी पहलू है, जिस पर विचार करना आवश्यक है। प्रगति के नाम पर उसका विकास कुछ इस तरह का हो रहा है कि सब काम यन्त्र द्वारा अपने-आप होने लगता है। मनुष्य केवल बटन दबा दे। इन यन्त्रों की बनावट, आकार-प्रकार—काम करने का तरीका वगैरह के बारे में सोचना, इनके नकशे-नमूने बनाना, यह सब ऊँचे दिमागवाले इने-गिने आदमी ही करते रहते है।

पुराने जमाने के लोग कहा करते थे कि शास्त्रों को अनधिकारी और कुपात्रों के हाथो में देना बहुत बड़ी भूल है। आज जो कुछ चल रहा है, वह इस कथन की सचाई का एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। बेशक, मनुष्य को थका देनेवाले बेकार के परिश्रम से अवश्य बचाना चाहिए। परन्तु उसे ऐसी हालत मे पहुँचा देना तो निःसन्देह बुरा है कि जिसमें उसका जीवन एकदम निरर्थक बन जाय और उसके हाथ-पाँव—इंद्रियाँ बेकार और पंगु बन

जायँ। मनुष्य-समाज के लिए एक ऐसा आदर्श बनाना कि जिसके अन्दर कोई प्रत्यक्ष काम न हो, केवल खेल ही खेल और मनोरंजन ही रहे, बड़ा खतरनाक है। इससे जीवन सूना, संस्कृति निःसार और संसार शैतान का लीला-क्षेत्र बन जायगा। मनुष्य-शरीर के लिए व्यायाम अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्यक्ष काम को ही स्वास्थ्यप्रद व्यायाम का रूप दे दिया जाय, तो वह कितना अच्छा हो। असल में काम और खेल को एक-दूसरे से अलग-अलग कर देना ही भूल है। केवल काम करने से ही मनुष्य का सर्वांगीण विकास हो सकता है, जो समाज के लिए भी उपयोगी, स्वास्थ्य-प्रद, आनन्ददायक और सृजन-शक्ति को बढ़ानेवाला है। इसलिए भावी समाज में बौद्धिक काम और शारीरिक काम, इस तरह के भेद रहेंगे ही नहीं; बल्कि परिश्रम, खेल और कला, इस तरह एक-दूसरे के अन्दर घुल-मिल जायँगे कि जीवन में नया आनन्द पैदा हो जायगा। छोटे-छोटे यन्त्रों की सहायता से, विकेन्द्रित पद्धति से, उत्पादन करने के पक्ष में एक और कारण भी है, जिसका विचार हमें अभी करना है; क्योंकि काम करने का आदर्श तरीका यही है।

हाँ, कुछ उद्योग और कारखाने ऐसे जरूर हैं, जिनका संचालन केवल केन्द्रीकरण की पद्धति से ही संभव है, क्योंकि इनके लिए आवश्यक कच्चा माल एक सीमित क्षेत्र में ही मिल सकता है। ऐसे क्षेत्रों में केन्द्रीकरण की पद्धति से बड़े पैमाने का उत्पादन टाला नहीं जा सकता। किन्तु दूसरी तमाम संपत्ति की भांति ये भी समाज की ही संपत्ति होंगे और इनका संचालन लोक-तंत्र की पद्धति से होगा। यह किस तरह संभव होगा,

इसके तरीके ढूँढ लिये जायँगे, ताकि सत्ता इने-गिने आदमियों के हाथों में केन्द्रित न हो जाय या यथासंभव ऐसा कम-से-कम हो।

एक बहुत महत्त्वपूर्ण उद्योग—शस्त्र-निर्माण का—इस नयी समाज-रचना मे बिल्कुल नही होगा। क्योंकि लड़ाइयाँ होंगी ही नही और इसलिए फौजों की भी जरूरत नही होगी।

इस समाज का राजनैतिक जीवन स्वभावत: आज की अपेक्षा बिल्कुल भिन्न होगा। विकेन्द्रीकरण इसकी विशेषता होगी, यह तो कह ही दिया गया है। शासन का स्थान प्रबन्धक-संस्थाएँ ले लेंगी और शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे जनता के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विषयों का प्रबन्ध प्राथमिक सस्थाओ के हाथ मे ही होगा।

नये समाज के अन्दर स्वार्थो का विरोध या सघर्ष न होगा और चूँकि लोग सद्भाव के साथ हिल-मिलकर रहेंगे, जीवन की पद्धति सहयोग की होगी, इसलिए सारे निर्णय हाथ गिनने के बजाय सर्वसाधारण की सम्मति से होंगे। इसके मानी यह नहीं कि तब लोगो की राय अलग-अलग नही होगी। अलग-अलग तो होगी, परन्तु इस मत-विभिन्नता की जड़ में हेतु व्यक्तियों या दलों का स्वार्थ नही, सर्वसाधारण का हित होगा। यह संभव है कि कभी-कभी व्यक्तिगत स्वार्थ समाज के हित के रूप मे पेश किये जायँ। परन्तु यह धोखा बहुत देर तक नही चल सकेगा। ज्यो ही असलियत लोगो की समझ में आ जायगी, लोक-भावना उनके खिलाफ इतने जोरों से जाग पड़ेगी कि उनके पैर उखड़ जायँगे। परन्तु समाज के कल्याण के बारे में भी कभी-कभी

तीव्र मतभेद खड़े हो सकते हैं। ऐसे प्रसंग पर विषय महत्त्वपूर्ण होने पर भी निर्णय मुल्तवी किया जा सकता है। क्योकि लोग सोचेंगे कि अन्ततोगत्वा कुछ हानि उठाकर या देर लगे, तो भी आपस में एकता और सद्भाव की रक्षा करना भला ही है।

यद्यपि सारे निर्णय सर्वसाधारण की सम्मति से लिये जायँगे, फिर भी यह संभव है कि कभी-कभी एक या अधिक व्यक्ति यह अनुभव करें कि कोई खास निर्णय इतना गलत हुआ है या किसीकी आत्मा को या सदसद्विवेकबुद्धि को इतनी अधिक चोट पहुँचा रहा हो कि वे इस निर्णय का विरोध करने पर मजबूर हो जायँ, तो ऐसी सूरत में समाज इन लोगों के सत्याग्रह के अधिकार को मान लेगा। परन्तु इसका अर्थ यह होगा कि यही हक दूसरे प्रकार की राय रखनेवालों को भी होगा। इस तरह व्यक्तिगत और नागरिक स्वतन्त्रता का अन्तिम सहारा 'सत्याग्रह' होगा।

हर प्राथमिक समाज अपने कुछ खास-खास काम और सेवाओ के लिए कुछ लोगों को चुन लेगा। यह चुनाव भी सर्व-सम्मति से होगा। इन सेवाओं के लिए चुने हुए व्यक्तियों को अलग से कोई पारिश्रमिक नही दिया जायगा, क्योंकि समाज ने अपने हर सदस्य के निर्वाह का प्रबन्ध पहले ही कर दिया होगा। इस तरह समाज को वेतन के रूप मे अपने प्रबन्ध के लिए कुछ भी खर्च नही करना होगा।

बड़े वृत्तो का प्रबन्ध उन समितियों के द्वारा होगा, जिनके सदस्य प्राथमिक या अन्य भीतरी वृत्तों द्वारा अप्रत्यक्ष चुनाव की पद्धति से चुने जायेंगे। इनके निर्णय भी सर्वसम्मति से ही होंगे

और इनके सदस्यों तथा पदाधिकारियों को भी वेतन के रूप में कुछ न देना होगा।

इतने विवेचन से अब यह तो स्पष्ट हो गया होगा कि नये समाज मे आज जैसी पश्चिम की या सोवियत रूस की दलोंवाली पद्धति नहीं होगी और फलतः सत्ता के लिए संघर्ष नही होगा।

यह नयी समाज-व्यवस्था—यद्यपि इसका स्वरूप अभी पूर्णत· स्पष्ट नहीं हुआ है—समाजवादी, साम्यवादी अथवा अन्य किसी "कल्याणकारी" प्रचलित समाज-व्यवस्थाओं से बहुत भिन्न प्रकार की होगी। क्योकि इन सब व्यवस्थाओं में सारी सत्ता ऊपर केन्द्रित हो जाती है और नीचे—लोगो के हाथों मे—यो ही थोडी-सी वची-खुची छोड़ दी जाती है। इनके अन्दर सपूर्ण सत्ता होती है शासनकर्ता दलों के हाथो में, पार्लियामेंट के पास और अधिकारी-वर्ग के अधीन। जनता का अधिकार तो अपने प्रतिनिधियों के चुनावो मे प्रारम्भ होता है और वही समाप्त भी हो जाता है। और ये चुनाव भी होते है केन्द्र द्वारा सचालित और सुगठित सत्ताधारी दलो के मार्ग-दर्शन और नियन्त्रण मे।

नये समाज में शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण काम करेगी। इसकी जिम्मेदारी मुख्यतः प्राथमिक सस्थाओं की होगी। उच्च शिक्षा की व्यवस्था बहुत-सी प्राथमिक सस्थाएँ मिल-जुलकर, सहयोग-पूर्वक कर लेगी। शिक्षा जीवन से पृथक् जैसी वस्तु नही, उसीका अपना अंग होगी। परिश्रम, उत्पादन और समाज की अन्य प्रवृत्तियों के साथ वह जुड़ी हुई होगी। मनुष्य के अन्दर सुप्त

भलाई को जाग्रत और विकसित करना उसका लक्ष्य होगा। संपूर्ण शिक्षा निःशुल्क होगी। ◆◆◆

: ३ :

इस नये समाज की तुलना जब आज के समाजों से करते हैं, तो वह सुनहले स्वप्न जैसी वस्तु प्रस्तुत होती है। और इसके प्रस्तुत करनेवाले हम लोगों को यह लोग स्वप्नदर्शी कहें, तो कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु जैसा कि हमने देखा है, अगर मनुष्य-जाति को जिन्दा रहना है, तो इसके सिवा कोई रास्ता नहीं दिखाई देता। फिर हम पूछते है—और यह और भी महत्त्व की बात है—कि जब मनुष्य ने विज्ञान मे और भौतिक समृद्धि मे इतनी उन्नति कर ली है, तब वह आत्मा को ऊपर उठानेवाली इस यात्रा मे नैतिक उच्चता की ओर बढने से क्यों डरता है? वह इसे असंभव अथवा अव्यावहारिक क्यों मान लेता है? सचमुच, मनुष्य के लिए संसार मे क्या इससे भी अधिक आनन्दोत्साह का देनेवाला और उसे शोभा देनेवाला दूसरा कोई काम हो सकता है? हम तो कहते है कि भले ही यह स्वप्न भी हो, तो भी इसे साकार करने के लिए जी-जान से जुट पड़ना मनुष्य के लिए अब सुलभ हो गया है।

तो, अब इसे पूरा कैसे किया जाय? इस अप्रतिम क्रान्ति का मार्ग क्या होगा? जवाब सीधा है। वर्तमान संस्थाओं के अंदर इस नवीन जीवन-क्रम के लिए आवश्यक ऐसे भारी-भारी परिवर्तन हमें करने होंगे। इसी प्रकार कई नयी संस्थाएँ भी खड़ी करनी होंगी। परन्तु इस महान् क्रान्ति का केन्द्र-बिन्दु तो

खुद मनुष्य ही होगा। बीच के संक्रमण-काल में संस्थाओं के अन्दर छोटे-बडे क्या-क्या परिवर्तन किये जाने चाहिए तथा निर्माण की जानेवाली नयी सस्थाएँ कैसी हो, इसका दिशा-दर्शन कुछ तफसील के साथ आगे दिया जा रहा है। नीचे कुछ मानवीय प्रक्रियाओं का वर्णन है।

जिस समाज का आधार ही प्रेम और आत्म-संयम है, उसकी स्थापना हिंसा और जोर-जबर्दस्ती से नहीं की जा सकती। लोगों को प्रेम करने के लिए मजबूर भी नही किया जा सकता। कानून या सत्ता के बल पर संपत्ति का बँटवारा किया जा सकता है। परन्तु किसीको जोर-जबर्दस्ती से हिस्सेदार नही बनाया जा सकता।

दूसरे को अपना हिस्सेदार आदमी तभी बनाता है, जब उसके दिल में प्रेम और दिल की भूख होगी। वितरण बाहरी परिवर्तन है। हिस्सेदार बनाने के लिए भीतरी परिवर्तन आवश्यक है। वितरण के लिए कानून में सुधार करने की जरूरत होगी, किन्तु हिस्सेदार अथवा साझी दूसरे को मनुष्य तभी बनायेगा, जब उसका दिल तैयार होगा। इसके जीवन-मूल्य बिलकुल भिन्न होगे। दूसरे क्रान्तिकारी आदर्शो ने बाहरी परिवर्तन पर ही अपना ध्यान केन्द्रित कर दिया है। हम जिस परिवर्तन का जिक्र कर रहे है, उसका केन्द्र-बिन्दु भीतरी परिवर्तन होगा।

क्रान्तियों का अनुभव कहता है कि केवल बाहरी परिवर्तनों से काम नही चलता। उनसे मनुष्य का दिल बदल ही जाता हो, ऐसी बात नही। फिर यह भी देखा गया है कि क्रान्ति के बाद मनुष्यों के दिलों में यदि आवश्यक परिवर्तन नही हो पाया, तो

वे बाहरी परिवर्तन भी नही टिक पाते, जिनको लोग इतना दिल से चाहते थे और जिनके लिए समाज ने इतने भारी-भारी वलिदान किये थे। इस तरह अन्त में क्रान्ति वेकार हो जाती है। उदाहरण के लिए देखिये कि सव क्रान्तियों का सवसे वड़ा उद्देश्य समानता की स्थापना रहा है। परन्तु आज तक कोई क्रान्ति इस समानता को लाने में सफल नही हुई है। समानता का आधार केवल एक ही हो सकता है और वह यह कि मनुष्य अपनी संपूर्ण शक्ति और बुद्धि समाज की सेवा में लगा दे। और समाज उसकी जरूरतों की पूर्ति कर दिया करे। परन्तु रूस के समान वड़ी से बड़ी आमूल-चूल वाहरी फेर-वदल कर देनेवाली क्रान्ति मे भी यह नही हो सका है। वहाँ पारिश्रमिक मिलने पर भी हर मनुष्य खुशी-खुशी समाज की सेवा नही करता। अथवा वहाँ मनुष्य अलग-अलग प्रकार के बुद्धि-कौशल और परिश्रम पर समान पारिश्रमिक पाकर खुश नही है। इस प्रकार जहाँ खानगी संपत्ति की विषमताओं को वढ़ानेवाले मुनाफा, व्याज और किराया जैसे साधन समाप्त कर दिये गये है, वहाँ भी आज भारी विपमताएँ पैदा हो गयी है, क्योकि वहाँ भी लोग पारिश्रमिक अपनी जरूरतों के अनुसार नही, वल्कि योग्यता, उत्पादन, प्रतिष्ठा और ओहदे के आधार पर चाहते हैं। जव इनको ध्यान मे रखकर वेतन दिया जाता है, तव परिणाम यही होता है कि एक मजदूर को वहुत कम वेतन मिलता है, यद्यपि उसके आश्रित अधिक होते है और दूसरी तरफ कम आश्रित होने पर भी एक अधिकारी अधिक वेतन पाता है। इस तरह तो विपमता और सामाजिक अन्याय वने ही रहते है। विपमता का यह खतरा वहाँ और भी बढ़

जाता है, जहाँ दूसरों के काम और वेतन का निर्णय करनेवालों के हाथों में अपने काम और वेतन का निर्णय करने का अधिकार भी होता है। जहाँ-जहाँ सत्ता चोटी के मुट्ठीभर आदमियों या अधिकारियो के हाथो मे केन्द्रित होगी, उन सब व्यवस्थाओ में यह बुराईं रहेगी ही। और समाजवाद अथवा साम्यवाद को भी, जिस रूप मे उनका आज प्रचार और व्यवहार किया जाता है, इससे खतरा है।

इस प्रकार हम समझते है कि हमारा मुद्दा बिलकुल साफ हो गया है। जब तक मनुष्य के हृदय में परिवर्तन नही हो जाता, तब तक केवल बाहरी परिस्थितियो को बदल देनेभर से काम नही चलता। जब तक मनुष्य को भीतर से प्रेरणा नही होगी कि वह समाज की सेवा मे तन-मन अर्पण कर दे और ले केवल अपनी जरूरतभर के लिए, तब तक समाज के अन्दर समानता नही आयेगी। यही नही, बल्कि तब तक न्याय और शान्ति की स्थापना भी नही हो सकेगी।

तव यह भीतरी परिवर्तन कैसे लाया जाय? निश्चय ही जोर-जबर्दस्ती इसका उपाय नही है। प्रेम से, बुद्धि के समाधान से, राजी करके और उदाहरण द्वारा ही यह सभव है। परन्तु क्या इस तरह जनता को बहुत बडी सख्या मे लोगों को समझाया जा सकता है? इसका उत्तर है हाँ, जरूर। जहाँ पर जनता की आँखों के सामने उपदेश और आचार के रूप में अच्छे आदमियों की प्रत्यक्ष मिसाल होती है, वहाँ यह परिवर्तन प्रतिदिन होता देखा जा रहा है। परन्तु हाँ, ऐसे हृदय-परिवर्तन की मिसाले तो बहुत थोड़ी मिलेंगी। जव तक ऐसा हृदय-परि-

वर्तन बड़े पैमाने पर नहीं होगा, तब तक समाज का स्वरूप नही बदल सकता और जीवन के नये मूल्य स्थापित नही होंगे। इन नये मूल्यों को स्थापित करने और मनुष्य के हृदय और दिल को बदलकर समाज के सारे स्वरूप को बड़े पैमाने पर पलट देने का शास्त्र महात्मा गांधीजी ने ढूंढ़ निकाला। मनुष्य-जाति को उनकी यह एक बहुत बड़ी देन थी।

श्री विनोबा का भूदान-यज्ञ इस शास्त्र का एक शानदार प्रयोग है।

केवल बाहरी परिवर्तन से सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे वादों ने स्वार्थों के संघर्ष को अपनी क्रान्तियों का प्रेरक बल बनाया। और इसके आधार पर बड़ी शक्तिशाली हलचले खड़ी की। परन्तु उनके परिणाम उत्साहवर्धक नही है। न वे भविष्य में कोई बड़ी आशाएँ बँधाते। इन हलचलो को जहाँ कुछ सफलता मिली भी है, वहाँ सत्ता, पद और सपत्ति की लालसा तथा लड़ाई-झगड़े और हिसा का साम्राज्य फैला हुआ है। स्वतंत्रता और समानता अब भी सपने की चीजें हैं। मनुष्य और समाज के लिए जिन आदर्शों को इस पुस्तिका में पेश किया गया है, उनसे इन वादों का कोई वास्ता नही दिखाई देता। स्वार्थों के सघर्ष स्वार्थ-परायणता का नाश और निःस्वार्थता पर आधारित समाज की स्थापना कभी नही कर सकते। अतः अगर स्वार्थ-परायणता रहती है, तो उसके साथ अपनी तमाम बुराइयों के साथ समाजो के बीच संघर्ष भी अवश्य ही रहेंगे।

आज तक की तमाम क्रान्तिकारी हलचलों की असफलता का मूल कारण यह नैतिक दोष रहा है। श्रीमानों के लालच,

स्वार्थान्धता और ममत्व की निन्दा की गयी है। परन्तु ध्यान देने की बात है कि साधनहीन गरीब भी इन दुर्गुणों से मुक्त नही रहे हैं। उन्होंने भी अपने स्वार्थ, ममता और लालच को नही छोड़ा है। लोगों ने चाहा है कि धनवानों की संपत्ति गरीबों में बाँट दी जाय। परन्तु गरीबों ने अपनी जमीन-जायदाद का मोह नही छोड़ा है। वे चाहते हैं कि उस पर तो उन्हीका अपना पूरा स्वामित्व रहे। छोटे किसान चाहते है कि बड़े जमीदारों की जमीनें बाँट दी जायँ, परन्तु अपनी जमीनों में से एक डिसमल का टुकडा भी वे छोड़ने के लिए तैयार नही है। स्वामित्व की भावना का जहाँ तक सम्बन्ध है, वह गरीब-अमीर, सबमें एक-सी है। गरीब के अन्दर रत्तीभर भी कम नही। लोग यह नही खयाल करते कि बड़ी-बड़ी खानगी जायदादें तो पिरामिड के शिखर की भाँति—बहुत कम हैं। परन्तु इस प्रथा का मूलाधार तो गरीबो की वे लाखो छोटी-छोटी जायदादें ही है। बड़ी-बड़ी खानगी जायदादें इसी कारण टिकी हुई है कि लाखो की सख्या मे गरीब उतने ही मोह के साथ अपनी छोटी-छोटी जायदादों से चिपके हुए है। अतः करोड़ों साधारण लोगो को यह समझ लेना है कि सपत्ति मात्र, चाहे वह थोड़ी हो या अधिक, समाज की है, क्योकि सारे समाज के सहयोग से ही उसका उत्पादन संभव हुआ है, अतः सबको हिल-मिलकर, बाँटकर उसका उपभोग करना चाहिए—यदि यह समझकर वे अपने-आप संपत्ति के स्वामित्व को छोड़ दें, तो खानगी स्वामित्व या सपत्ति की सारी इमारत बात की बात मे ढह जाय।

सामाजिक परिवर्तन लानेवाली यह एक जबर्दस्त नयी

शक्ति है। जो क्रान्तिकारी वर्ग चाहते है, कि समाज के अन्दर से असमानता, सामाजिक अन्याय, शोषण, स्वार्थपरायणता और लालच मिट जाने चाहिए, उन्हे चाहिए कि वे इसका प्रारम्भ खुद अपने जीवन से करे। उन्हें खुद इसलिए प्रारम्भ करना चाहिए कि वे समाज मे इन मूल्यो की स्थापना द्वारा क्रान्ति लाना चाहते है। धनवानों के धन पर लालच की निगाह डालने से पहले वे अपने निजी लोभ-लालच को दिल से निकाल बाहर करें, ऐसे सब व्यक्तियों की संपत्ति एकत्र करे और आपस में समानतापूर्वक उसका उपभोग करें। अगर लाखों की संख्या में लोग यह करने लगेगे, तो एक नैतिक वातावरण बन जायगा और फिर धनवानों को भी अपनी संपत्ति समर्पित कर देने की प्रेरणा होने लगेगी। तब वे इसे टाल नही सकेंगे और अपनी संपत्ति देकर, सबके साथ मिलकर—सबके समान बनकर उसका उपभोग करेगे। इतने पर भी अगर कोई ऐसा नही करेगा, तो जिनके सहयोग से उन्होने इस संपत्ति को पाया और रक्षा कर पाये हैं, वे सब उनके साथ सहयोग करने से इनकार कर देने के अधिकारी हो जायेगे। ध्यान देने की बात है कि इस असहयोग का हेतु संपत्ति का लालच नही, बल्कि बुराई में सहयोग नहीं देना, यह होगा। जब तक गरीबों के अन्दर खुद लोभ, लालच, ममता भरे पड़े हैं, तब तक वे किसी ऐसे ही आदमी से महज इसलिए कि वह अधिक संपत्ति बटोरने में सफल हो सका है—असहयोग करने के अधिकारी नही बन जाते। ऐसी सूरतों में किया गया असहयोग तो उससे संपत्ति का बड़ा हिस्सा छीनने के लिए धारण किया गया एक शस्त्रमात्र होगा।

भूदान-यज्ञ इस नयी शक्ति का एक सुन्दर उदाहरण है।

इस नयी सामाजिक शक्ति का भूदान एक नया उदाहरण जरूर है; परन्तु हर जगह इसी प्रकार को काम में लिया जाय, यह जरूरी नही है। असलि महत्त्व की बात तो उसका मूलभूत सिद्धान्त और शास्त्र है। इस सिद्धान्त और शास्त्र को समझकर ससार के राष्ट्र अपने लिए नयी-नयी हलचलें ढूँढ़ सकते है। आज तो वे शस्त्रों के उत्पादन की घुड़दौड़ में लगे हुए हैं। इसके बजाय अगर वे शस्त्रास्त्रों के निर्माण मे लगनेवाले अपार धन के अश को भी अपने-अपने राष्ट्र में या राष्ट्रो के बीच सदुपयोग में लगाने की हलचलें शुरू कर दें, तो भी ससार में शान्ति की स्थापना हो सकती है और सर्वनाश से मनुष्य-जाति को बचाया जा सकता है। तब सह-अस्तित्व सहयोग मे परिणत हो जायगा, जिससे संसार के तमाम मनुष्यों और राष्ट्रों का कल्याण होगा।

◆

भाग दूसरा

: १ :

लक्ष्य

सर्वोदय-योजना का लक्ष्य 'सर्वोदयी समाज-व्यवस्था' कायम करना है। सर्वोदय को अधिक-से-अधिक लोगों की अधिक-से-अधिक भलाईवाले उपयोगितावादी लक्ष्य से संतोष नही। वह यह भी विश्वास नहीं करता कि एक अटल ऐतिहासिक प्रक्रिया समाज के अन्दर एक-दूसरे के विरोधी स्वार्थवाले वर्ग निर्माण करती रहती है और ऐसी शक्तियो को उत्पन्न करती रहती है, जो इनको एक-दूसरे से लड़ाती रहती है। इस विचार के माननेवाले समझते है कि हमारा काम तो सिर्फ इतना है कि इनमे से जो सबसे बड़ा वर्ग पददलितों का है, उसकी मदद करके हिंसा के वैज्ञानिक उपयोग द्वारा इस ऐतिहासिक प्रक्रिया की गति को जरा तेज कर दे और तानाशाही की मदद से उस बहुसंख्यक दलित-वर्ग को सत्ताधारी बना दे। सर्वोदय वह दर्शन भी नही, जो सर्वाधिक भौतिक समृद्धि को सामाजिक प्रगति का एकमात्र या मुख्य नाप भी मानता हो।

जैसा कि शब्दार्थ से ही प्रकट है, सर्वोदय का अर्थ है सबकी सर्वांगीण उन्नति। वह मानता है कि समाज के अन्दर व्यक्तियों और संस्थाओ के सम्बन्धो का आधार सत्य और अहिंसा होना चाहिए। उसका यह भी विश्वास है कि समाज में सब व्यक्ति

समान और स्वतंत्र हैं। और इनके बीच कोई चिरस्थायी सम्बन्ध हो सकता है और इनको एक साथ रख सकता है, तो वह प्रेम और सहयोग ही है, न कि वल और जोर-जबर्दस्ती। मनुष्य के भीतर होड, प्रतियोगिता और लड़ाई की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देकर समाज में प्रेम और सहयोग न तो उत्पन्न किया जा सकता और न उसका संवर्धन किया जा सकता है। सर्वोदयी समाज-व्यवस्था ऐसे वातावरण में पैदा नही हो सकती, जहाँ जुल्म के यन्त्र पूर्णता को पहुँचा दिये गये है, और व्यक्तिगत स्वार्थ या मुनाफा कमाने का लोभ इतना बलवान् बन गया है कि उसने प्रेम और भ्रातृभाव को दबा दिया हो और समानता की भावना को नष्ट कर दिया हो। सर्वोदय को ऐसी समाज-रचना कायम करनी है, जिसके अन्दर सस्थाओं द्वारा सत्ता का प्रयोग अनावश्यक बना दिया जायगा, क्योकि यह भी तो बल-प्रयोग का एक प्रतीक ही है। अथवा सत्ता के प्रयोग को इतना घटा दिया जायगा कि जो हमारी अहिंसा की यात्रा मे एकदम अनिवार्य हो। मतलब यह कि सर्वोदय समाज में व्यवस्था तो चाहता है, परन्तु बल-प्रयोग द्वारा निर्माण की गयी व्यवस्था नही। वह मानता है कि स्वतंत्रता कही स्वच्छन्द और मनमानी का रूप धारण न कर ले, इसलिए सयम आवश्यक है। परन्तु यह विश्वास नही करता कि मनुष्य इतना अधम है कि वह बाहरी दबाव के वगैर समभ का या समाज के हित का काम करेगा ही नही। इसके विपरीत उसे तो विश्वास है कि अगर मनुष्य को आवश्यक शिक्षा मिल जाय, तो वह अपने-आप इतना संयम कर लेगा कि जिसमे बाहरी दबाव की जरूरत ही नही रहेगी। तब राज्य-

संस्था एक अनावश्यक वस्तु वन जायगी। परन्तु अगर कोई यह माने कि यह तो एक दूर की बात है, तो भी मनुष्य-समाज संयम की दिशा में ज्यों-ज्यों प्रगति करता जायगा, त्यों-त्यों राज्यसत्ता का उपयोग अवश्य ही घटता जायगा और वह सत्ता समाज की सेवा करनेवाली संस्थाओं के हाथों में पहुँचती जायगी, जिनको उसका उपयोग करने की आवश्यकता ही नहीं होगी; क्योंकि उनका वल तो प्रेम, सहयोग, समझाना-वुझाना और प्रत्यक्ष समाज-हित होगा।

इसलिए सर्वोदय-समाज एक ऐसी व्यवस्था होगा, जिसमें समाज की एकता अथवा प्रगति के लिए सत्ता के धारण करने और उपयोग की जरूरत नही होगी। ये काम वहाँ समझाने-वुझाने और सत्याग्रह के द्वारा होंगे। इसका प्रारम्भ एक साथ दो तरह से होगा। एक तरफ तो आज राजनैतिक और आर्थिक संस्थाओ के हाथों मे जो सत्ता केन्द्रित है, उसका विकेन्द्रीकरण होगा और दूसरी तरफ जनता को सत्याग्रह के शास्त्र और कला की शिक्षा दी जायगी। क्योंकि समाज को सत्ता के दुरुपयोग से वचाने का यही अन्तिम और अमोघ उपाय है। हम सर्वोदय-समाज-रचना की तरफ वढ़ रहे हैं या नही, इसका अचूक लक्षण तो यह होगा कि राजनैतिक और आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण होकर किस गति से वह उत्तरोत्तर वल का प्रयोग न करनेवाली छोटी-छोटी संस्थाओं के हाथों में सौंपी जा रही है। यह विकेन्द्रित समाज सच्चे जनतंत्र और समानता का नमूना होगा। वास्तव में विकेन्द्रीकरण समानता और लोकतंत्र का प्राण है। क्योंकि सिद्धान्ततः लोकतंत्र का मतलव है, सवको समान अधिकार।

और केवल राजनैतिक सत्ता का ही नही, इसके साथ-साथ स्वामित्व के उन सब प्रकारों का विकेन्द्रीकरण आवश्यक है, जिनके कारण एक मनुष्य को दूसरे मनुष्यों पर सत्ता प्राप्त हो जाती है। उदाहरणार्थ, उत्पादन के साधनों पर मुट्ठीभर आदमियों का स्वामित्व नही होगा। जहाँ तक संभव होगा, उत्पादन के साधन पर उसे काम मे लानेवाले आदमी का ही स्वामित्व होगा। जहाँ यह संभव नही होगा, वहाँ उन सबका मिलकर उस पर स्वामित्व होगा, जो उसे काम मे लेंगे और फायदा उठायेंगे। इस प्रकार कोई मनुष्य दूसरे मनुष्य का शोषण नही कर सकेगा और न उत्पादन के साधनों का इस तरह उपयोग कर सकेगा कि जिसके कारण बहुसंख्यक मनुष्यों को निरे मजदूर बना दिया जा सके और मुट्ठीभर लोग निठल्ले पड़े रहे। इस समाज में कोई वर्ग नही होंगे, क्योकि हर मनुष्य को परिश्रम करके अपनी रोजी कमानी होगी। उत्पादन के औजार इस तरह के बनाये जायेंगे कि प्रत्येक आदमी उन्हे अपने अधिकार मे रखकर उनसे काम ले सकेगा। इसका नतीजा यह होगा कि न कोई किसीका शोषण कर सकेगा और न कोई वर्ग पैदा होगा। समाज के लिए उपयोगी और आवश्यक हर काम का मूल्य एक-सा होगा, चाहे वह दिमागी हो या शरीर-मेहनत का। इस समाज मे पुराने जमाने से चले आये ऊँच-नीच के या जात-पाँत के भेद भी नही होंगे। वह स्वतत्र और समान अधिकारवाले व्यक्तियों का समाज होगा, जिसके अन्दर हर आदमी अपनी जिम्मेवारी को समझेगा और संयम तथा सहयोगपूर्वक समाज की एकता की रक्षा करेगा। इसके सदस्यों

में पारिवारिक स्नेह होगा। व्यक्ति को सारे समाज और समाज को हर व्यक्ति का खयाल होगा। व्यक्ति और समाज का योगक्षेम अच्छी तरह से होकर वह अपनी नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक उन्नति भी कर सके, इसके लिए आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति की साधारण जरूरतो की पूर्ति हो जाय। और इसके लिए सभी यत्नशील होगे। परन्तु इस समाज मे केवल भौतिक दृष्टि से संपन्न होना मुख्य लक्ष्य नही माना जायगा। मनुष्य की नैतिक और आध्यात्मिक प्रगति तभी हो सकती है, जब अमुक मात्रा मे उसकी भौतिक जरूरतो की पूर्ति हो जाती है। भौतिक समृद्धि इस भीतरी प्रगति के लिए जिस मात्रा में आवश्यक है, बस उतना ही महत्त्व सर्वोदय उसे देता है।

आर्थिक और राजनैतिक पहलुओं को ही नही, बल्कि समस्त जीवन को स्पर्श करनेवाली यह मूलगामी सामाजिक क्रान्ति केवल आर्थिक और राजनैतिक सस्थाओ का रूप बदल देने भर मे नही हो सकती, यह तो स्पष्ट ही है। इसके लिए हमे कही गहरे जाना होगा। मनुष्य की समग्र दृष्टि को और उसकी आदतो को बदलना होगा। समाज और व्यक्ति को प्रेरणा प्रदान करनेवाले तमाम मूल्यो और आदर्शों को बदल डालना होगा। यह मूलगामी क्रान्ति केवल धीरज के साथ और अनवरत यथार्थ लोक-शिक्षण से ही संभव होगी। परन्तु साथ ही हमे एक बात और करनी होगी। इन आदर्शों की सिद्धि में बाधक होनेवाली वस्तुओं को भी हटाना होगा। उदाहरणार्थ, समाज मे कुछ पारम्परिक सम्बन्ध और आर्थिक तथा राजनैतिक संस्थाएँ है,

जिनका वर्तमान स्वरूप इस लक्ष्य की सिद्धि मे बाधक हो रहा है। उनके स्वरूप और रचना को हमे बदलना होगा। यह करने से हमारी सुधार की गति बढ जायगी। योजना के इस भाग में हम इस विषय पर विचार करेगे और सक्षेप में बतायेंगे कि किन-किन आर्थिक और राजनैतिक संस्थाओं की रचना और स्वरूप मे हमें क्या-क्या और कैसे-कैसे फेर-बदल करने होंगे।

वे लक्ष्य इस प्रकार है :

(१) समाज के हर सदस्य को पूरे समय का और पेट भर लायक काम देना। इसके लिए समाज की समस्त अर्थ-रचना में आवश्यक परिवर्तन करना होगा। विज्ञान और यन्त्र-शास्त्र को उत्पादन मे लगा देना होगा। इसी प्रकार प्राप्ति और वितरण के सिद्धान्तों को भी नवीन समाज-रचना के अनुकूल बनाना होगा। ऐसी परिस्थिति निर्माण करनी होगी कि हर बालिग स्त्री-पुरुष खुशी-खुशी काम करे। काम का चुनाव भी वह खुद ही कर सकेगा। परिश्रम निर्वाह का साधन तो होगा ही, क्योकि समाज की भौतिक और सास्कृतिक जरूरतो की पूर्ति के लिए वह अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु इसके अलावा भी शरीर के स्वास्थ्य और बौद्धिक एव मानसिक विकास की प्रशिक्षा के लिए, जो कि वह जान मे और अनजान मे पाता रहता है, काम करना आवश्यक है। काम से मनुष्य का व्यक्तित्व संपन्न, समृद्ध और पूर्ण बनता है। इसीकी मदद से वह अपने समाज की सस्कार-सपत्ति भी बढाता है, जिससे वह नित्य भौतिक, सास्कृतिक और आध्यात्मिक जीवन पाता रहता है। समाज का कर्तव्य है कि वह प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक उपभोग्य सामग्री प्राप्त करने मे मदद करे।

णाली को इस दृष्टि से बदलना होगा कि वह बेकारी को पूरी तरह मिटाने में मददगार हो सके और अन्त में उन उद्योगों की कार्यशक्ति को बढाना होगा, जो अधिक-से-अधिक लोगों को काम देने की शक्ति रखते होंगे। इस तरह दो दृष्टियो में मौलिक भेद है और यह स्वाभाविक है कि इसका असर प्रत्येक योजना के हर हिस्से और पहलू पर भी अवश्य होगा। एक योजना स्वभावतः उत्पादन की वृद्धि पर जोर देगी। वह कहेगी कि यह वृद्धि जल्दी-से-जल्दी होनी चाहिए। अत. कल-कारखाने बढाने होंगे। संभव है, इनको अत्यधिक संख्या में भी बढाना पड़े। यह पूँजीवादी पद्धति में ही संभव है। इनसे फिर पूंजी का केन्द्रीकरण स्वभावत· बढेगा। इसमें निःसन्देह कुछ लोगों को काम मिल सकेगा। परन्तु वह तो अपने-आप होगा, क्योंकि उसमें असली हेतु सबको काम देना नहीं है, इसलिए बेकारी बनी ही रहेगी। अत्यधिक प्रयत्न करने पर भी इस पद्धति में लोगों को मिलनेवाला रोजगार नाकाफी होगा। यह भी संभव है कि इस बढती हुई आबादीवाले देश में पर्याप्त लोगो को रोजगार देने में वह योजना एकदम असफल भी सिद्ध हो। बहुत अधिक हुआ, तो वह बेकारों के आँसू पोंछने के लिए बेकारों को मदद के तौर पर कुछ टुकडे दे दे अथवा इस भारी कारखानोवाली समाज-व्यवस्था में, जो कि मनुष्य की अपेक्षा यन्त्रों पर अधिक निर्भर करेगी, कभी-कभी बेकारों को काम मिल जाय और कभी-कभी भूखों ही रहना पड़े। इसलिए ऐसी योजना से लाभ भले ही अंकों में कुछ भी बताया जाय, बहुत कम लोगों को हो सकेगा।

अब दूसरी योजना को लीजिये। उसका सबसे पहला लक्ष्य

होगा, बेकारी को मिटाना। यन्त्रों की अपेक्षा अधिक-से-अधिक मजदूरों को वह काम देना चाहेगी। आज जो पूरी तरह अथवा अंशतः बेकार हैं, उनको सबसे पहले पूरा काम देकर वह उनका जीवन-मान ऊँचा उठाना चाहेगी। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर वह उद्योगों का पुनःसंगठन करेगी और अधिक-से-अधिक मनुष्यो को काम देने की शक्ति रखनेवाले उद्योगों के यन्त्रों में आवश्यक सुधार करेगी, ताकि वह कम-से-कम समय मे अधिक और अच्छा उत्पादन दे सके। इस योजना का लाभ उन लोगो के जीवन मे प्रत्यक्ष दिखाई देगा, जो सबसे नीचेवाली सीढ़ी पर पड़े है।

चूँकि सर्वोदय की समाज-रचना मुख्यतः विकेन्द्रीकरण पर आधारित है और चूँकि उसमे उत्पादन के साधनो पर मुट्ठीभर धनवानो, सत्ताधीशो या यंत्र-शास्त्र-विशारदों का अधिकार नही रह पायेगा, इसलिए वेकारी को मिटाने का अर्थ यह होगा कि हर आदमी अपने लिए काम करेगा। कोई किसीको रोजी नही देगा। सब अपनी-अपनी रोजी कमायेगे। काम देनेवाला और काम पानेवाला शब्दों का प्रयोग तो उसी समाज मे हो सकता है, जहाँ उत्पादन के साधन पर काम करनेवाले का स्वामित्व नही होगा। यह स्थिति ही नही रह पायेगी कि एक आदमी के पास उत्पादन के साधन है, पर वह खुद उनसे काम नहीं करता और दूसरा काम करता है, परन्तु उसके पास अपने औजार नही। काम करनेवाले के अपने औजार या यन्त्र होगे और वह समाज द्वारा मजूर तंत्र की मदद से अपने उत्पादन को वेचने का प्रवन्ध कर सकेगा। उत्पादन के साधन इस प्रकार के होगे कि जिनके प्रयोग

में मनुष्य को बुद्धि-शक्ति और समय का उपयोग करने का अवसर मिल सकेगा। और वह ऐसी ही चीजे बनायेगा, जो समाज के लिए उपयोगी होगी। मतलब यह कि काम देनेवाला और काम करनेवाला, यह सम्बन्ध ही सर्वोदय-समाज में नहीं रहेगा, क्योंकि यही चीज तमाम बुराइयों की जड़ है। पूंजीवादी समाज में यह अन्याय की जननी है और साम्यवादी समाज में, जहाँ उत्पादन के समस्त कारखानों और साधनों पर राज्य का अधिकार होता है, वह मनुष्य को निरा गुलाम बना देती है।

परन्तु मान लीजिये कि उत्पादन के कुछ साधन ऐसे भी होगे, जिन पर व्यक्तियों का स्वामित्व नहीं हो सकता, वहाँ उन पर सहकारी संस्थाओं, ग्राम-संस्थाओ या राज्य का स्वामित्व होगा। परन्तु यत्न तो यही होगा कि मनुष्य को दूसरे के अधीन होकर काम न करना पड़े। अतः सर्वोदय-समाज के अन्दर बेकारी मिटाने के मानी होंगे, लोग आम तौर पर खुद अपना-अपना काम करेगे। किन्तु जिन उद्योगों में आर्थिक कारणों से या यन्त्रसम्बन्धी कठिनाई के कारण यह सम्भव नही होगा, वहाँ सहकारी संस्थाओं के जरिये काम होगा। मतलब यह कि लोग हिल-मिलकर एक-दूसरे को काम देने का प्रबन्ध करते रहेंगे। स्पष्ट ही तमाम लोगो को तब तक काम नही दिया जा सकता, जब तक कि उत्पादन को विकेन्द्रित नही किया जायगा और मनुष्य को यन्त्र की गुलामी से छुड़ाने के लिए यंत्रों में भी आवश्यक सुधार नहीं किया जायगा।

(२) यह निश्चित कर लेना है कि समाज के हर सदस्य की तमाम आवश्यक जरूरतों की पूर्ति हो जाय, जिससे कि वह अपने

व्यक्तित्व का पूरा-पूरा विकास कर सके और समाज की उन्नति में भी उचित योगदान कर सके। पहले ही बताया जा चुका है कि सर्वोदय में समाज की उन्नति के लिए यह कोई अनिवार्य अथवा मुख्य शर्त भी नहीं कि मनुष्य को अधिक-से-अधिक भौतिक सुख मिलने ही चाहिए। वह इस विचार को भी पसन्द नही करता कि उत्पादन को खूब बढ़ाकर उसके लिए बाजारो पर कब्जा किया जाय और मनमाना मुनाफा कमाया जाय। इसी प्रकार यह भी अच्छा नही कि मनुष्य अपनी जरूरतों को असीम बढा ले और फिर कारखानेदारों या सर्वशक्तिमान् राज्य का मुहताज बन जाय। परन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि जो अर्थ-व्यवस्था अपने सेव्य समाज की प्राथमिक जरूरतों की पूर्ति करने की भी परवाह नही करती, उसे यह आशा नही करनी चाहिए। उस समाज मे शान्ति, स्थिरता, न्याय समानता और अहिसा की रक्षा हो सकेगी। जीवन की अत्यावश्यक जरूरतों की पूर्ति की सामग्री भी पैदा न करना विषमता, पक्षपातपूर्ण वितरण, अन्याय, अरक्षा और सामाजिक उथल-पुथल को सीधा निमन्त्रण देना है। इसलिए सर्वोदय की अर्थ-व्यवस्था मे इस बात का खयाल सबसे पहले रखा जायगा कि कम-से-कम जीवन की अनिवार्य रूप से आवश्यक वस्तुएँ पैदा कर ली जायँ, ताकि सबको बुनियादी जीवन-मान उपलब्ध हो जाय। इसके लिए उत्पादन के साधनो मे सुधार और उत्पादन की पद्धतियो का संगठन नये सिरे से करना होगा। हिसाब लगाकर देखा गया है ("ठेठ नीचे से निर्माण"—खादी बोर्ड का प्रकाशन) कि भारत में लोगो की आदतें जैसी बन गयी है, उनको देखते हुए एक

साधारण परिवार की अन्न, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य, शिक्षा और मनोरंजन सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए १९५५ के मूल्य-निर्देशांक के अनुसार वार्षिक ३०००) जितनी आय होनी चाहिए। इतनी आय में परिवार को नीचे लिखी चीजें मिल सकेंगी :

एक परिवार की वार्षिक जरूरतें

	वस्तु	दैनिक जरूरत	कीमत रु० में	योग
अ	१ अनाज	८० औंस	३००–०–०	
	२ दालें	२० ,,	५०–०–०	
	३ दूध	६० ,,	१८०–०–०	
	४ सब्जी	४० ,,	२००–०–०	
	५ घी-तेल	१२ ,,	३५०–०–०	
	६ मछली, अण्डा, मांस या उतने ही पोषक तत्त्व के शाकाहारी पदार्थ	२० औंस	४५०–०–०	
	७ फल	३० ,,	१५०–०–०	
	८ गुड़-चीनी	२० ,,	१००–०–०	
	९ मसाले	——	२०–०–०	
				१८००–०–०

	वस्तु	कीमत	योग
आ	कपडे—ओढना-बिछौना	२५०–०–०	
इ	मकान की मरम्मत वगैरा	१७५–०–०	
ई	स्वास्थ्य-रक्षा, दवा	१७५–०–०	
उ	वृद्धावस्था के लिए व्यवस्था	१००–०–०	
ऊ	शिक्षा, पुस्तकें	२००–०–०	
ए	मनोरंजन-अन्य	३००–०–०	
			१२००–०–०
			३०००–०–०

एक साधारण परिवार की यह कम-से-कम आवश्यकता है, जिसे एक निश्चित समय के अन्दर पूरी करने का यत्न योजना को करना चाहिए। लेकिन आज एक परिवार की जो औसत आय है, उसे तथा निम्नतम मूलभूत आवश्यकताओ के बीच इतनी बड़ी दरार है कि अल्प अवधि के भीतर उसे किसी भी योजना से, यदि वह भारी उद्योगो को आधार मानकर चले, अथवा विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था को आधार मानकर चले, पाटा नहीं जा सकता। फिर भी ऐसा कोई संयोजन तो करना ही होगा, जिससे हम अधिक-से-अधिक परिवारो को निश्चित अवधि के भीतर इस मूलभूत आवश्यकता के स्तर तक पहुँचाने मे सफल हो सके। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए समय निर्धारित कर लेना होगा और संयोजन-काल के भीतर उपलब्ध साधनो का विचार कर क्रम-क्रम से आगे बढ़ने पर कार्य सफल हो सकेगा। समाज की इन मूलभूत आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए हमे कितना परिश्रम और तरक्की करनी होगी, इसका अन्दाजा एक इसी बात से हो सकता है कि आज भारत मे औसत मनुष्य की आय सालाना १३२०) है। जिनकी आय ३६००) से ऊपर है, ऐसे परिवार देश मे केवल ५९.२ लाख है। यह हमारे देश की आवादी का केवल ७.४ प्रतिशत है। इसलिए योजना इतना उत्पादन बढाने और सेवाएँ उपलब्ध करने का यत्न करेगी कि यह ९२.६ प्रतिशत आवादी ७.४ प्रतिशत के-से जीवन-मान को प्राप्त कर सके। इसके लिए उनकी क्रय-शक्ति बढानी होगी। अकों की औसते कितनी धोखा देनेवाली होती है, इसका अध्ययन करने पर यह वात और भी साफ हो जायगी। नीचे कुछ अंक दिये

गये हैं*। दूसरी बार के नेशनल सैंपल सर्वे में दी गयी जानकारी से इनको हिसाब लगाकर प्राप्त किया गया है। वे इस बात को सिद्ध करते हैं कि अंकों में जो प्रगति बतायी जाती है, वह नीचे के स्तर के गरीब तक पहुँच ही नहीं पाती। इसलिए अगर देश की हालत सुधारनी है, तो जो भी योजना हो, उसे सबसे पहले इन ९२·६ प्रतिशत की तरफ ध्यान देना चाहिए, जिनकी आय ३६००) से कम है।

परिवारों का वर्गीकरण

वार्षिक खर्च रुपयों में	परिवार संख्या लाखों में	कुल आबादी का प्रतिशत
६००) तक	१६३·२	२०·४
६००) से १२००)	२४९·६	३१·२
१२००) से १८००)	१६८·८	२१·१
१८००) से २४००)	८३·२	१०·४
२४००) से ३६००)	७६·२	९·५
३६००) से ऊपर	५९·२	७·४
	८००·२	१००·०

(३) जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं के विषय में यह कोशिश हो कि प्रत्येक प्रदेश स्वावलम्बी हो। सर्वोदय-योजना का लक्ष्य यह भी होना चाहिए कि जीवन की प्राथमिक जरूरत की चीजें जहाँ तक सम्भव हो, हर गाँव और प्रदेश-विशेष खुद ही पैदा कर लिया करे। बेशक इसमें भौगोलिक और कच्चे माल की

* ऑल इण्डिया खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड, बम्बई द्वारा प्रकाशित 'बिल्डिंग फ्रॉम बिलो' में उद्धृत।

सुलभता का प्रश्न तो रहेगा ही। अन्न-वस्त्र जैसी अत्यावश्यक चीजो के बारे में स्वावलम्बी होना परमावश्यक होगा। एक प्रदेश की जनता स्वेच्छापूर्वक यह निश्चय कर सकती है कि वह कौन-कौन-सी चीजें कितनी मात्रा मे बाहर से मँगायेगी। दूसरी तरफ योजना खुद अमुक प्रदेश में स्वावलम्बन निर्माण करने का यत्न कर सकती है। स्वभावतः इन दो यत्नो में निश्चित अन्तर होगा। योजना द्वारा स्वावलम्बन का जो प्रयास होगा, उसमें ऐसी अनुचित कड़ाई नही होगी कि जीवन की जरूरी चीजे भी वहाँ वाहर से न पहुँचने दी जायँ और समाज का जीवन एकदम जगलियों का-सा बन जाय। अन्न-वस्त्र जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं को छोडकर बहुत-सी ऐसी चीजें होगी, जिनको एक प्रदेश दूसरे प्रदेश से ले सकेगा। इसी प्रकार गाँवो और प्रदेशों के बीच बौद्धिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी अवश्य होता रहेगा। किन्तु इस आदान-प्रदान का आधार प्रेम, सेवा और सहयोग होगा। जिस चीज को हमे मिटाना है, वह है परावलम्बन, जिससे शोषण को मौका मिलता है और आलस बढ़ता है।

जहाँ प्राकृतिक साधनो की कमी नहीं होगी, ऐसे क्षेत्रो में प्राथमिक आवश्यकताओ के विषय मे स्वावलंबन की दिशा में सवसे पहले अन्न, कपडा, मकान, प्राथमिक शिक्षा और साधारण बीमारियों का इलाज, इन बातो मे समाज को स्वावलम्बी बनाने का यत्न किया जायगा। जहाँ इसकी प्राकृतिक अनुकूलताएँ न होगी, वहाँ कमीवाले गाँवो के ऐसे ग्राम-मण्डल वना दिये जायेगे, जो सहयोग, विनिमय और सवकी उपज को इकट्ठा करके अपनी कमी को पूरी कर लेगे। जहाँ यह भी संभव न हो,

वहाँ वे गाँव या क्षेत्र-विशेष अपने साधनों का अधिक-से-अधिक उपयोग करके तथा अन्य ग्राम-उद्योगों की व्यवस्था करके शेष कमी की पूर्ति उस प्रदेश की योजना में से कर सकते हैं।

जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं के विषय में स्वावलंबन के आदर्श का अर्थ—जैसा कि ऊपर बता दिया गया है—यह नहीं कि सख्ती के साथ भौगोलिक बाड़ें खींच दी जायँ। स्वावलम्बी इकाइयाँ ऐसी अनेक चीजों के बारे में एक-दूसरे की पूर्ति कर दिया करेंगी, जो जीवन की प्राथमिक जरूरतें नहीं होंगी। बात यह है कि प्राथमिक जरूरतों के बारे में अधिक समय तक दूसरे पर निर्भर करने से व्यक्ति की भाँति परावलम्बी प्रदेशों की जनता के भी स्वाभिमान और स्वतन्त्रता को निश्चय ही हानि पहुँचती है। उसकी ये जरूरतें पूरी करनेवाले प्रदेश उसके साथ भेदभाव का वर्ताव और शोषण करने लगेंगे। परस्परावलंबन वहीं निर्दोष और लाभदायक हो सकता है, जहाँ ऐसा सम्बन्ध रखनेवाले समाज प्राथमिक जरूरतों के मामले में पूरी तरह स्वावलम्बी होते हैं।

(४) यह भी निश्चय करना होगा कि उत्पादन के साधन और क्रियाएँ ऐसी न हों, जो प्रकृति का शोषण निर्मम बनकर कर डालें। उत्पादन में प्राणिमात्र के प्रति आदर और आनेवाली पुश्तों की जरूरतों का खयाल रखना भी परम आवश्यक है। प्राकृतिक संपत्ति का उपयोग करते समय तात्कालिक लाभ के लालच में दूरवर्ती—लम्बे लाभ-हानि को भुला देना समझदारी की बात नहीं होगी। इसलिए अगर उत्पादन की किन्हीं क्रियाओं और पद्धतियों से ऐसी प्राकृतिक संपत्ति का नाश हो रहा हो कि

जिसकी पूर्ति आगे होने की संभावना न हो, तो इस वात को पूरी तरह समझकर जहाँ सारे मानव-समाज का हमेशा के लिए हित-सावन सभव हो, ऐसे ही प्रसंगो और कार्यो के लिए इनका उपयोग किया जाय। इसलिए उत्पादन की किन पद्धतियों क्रियाओं और साधनों से काम लिया जाय, इसका निर्णय समस्त मानव-जाति की जरूरते और युगों से मानव-समाज ने जो सास्कृतिक मूल्य निश्चित कर रखे हैं, उनका विचार करके ही किया जाय। प्राकृतिक संपत्ति के उपयोग के साथ-साथ, जहाँ तक मनुष्य के लिए संभव है, इसे पुन. लौटाने की क्रिया भी चलती रहनी चाहिए।

अत: नयी योजना मे मनुष्य अपने आसपास की और उसकी सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियो से सम्वन्धित तथा प्रभावित समस्त जीव-सृष्टि की रक्षा करना और उसकी सेवा का ध्यान रखना अपना कर्तव्य समझेगा।

अगर योजना के उद्देश्य और लक्ष्य ये है, तो उसकी रूपरेखा और अमल भी इनको कार्यान्वित करने की दृष्टि से ही होना चाहिए। तदनुसार योजना वेकारी को एकदम मिटाना चाहती है। अत: अधिक-से-अधिक लोग रोजी कमाने खुद लग जायँ, यह यत्न करना है। योजना का यत्न है कि समाज के व्यक्तियो का जीवन-मान एक निश्चित न्यूनतम सीमा तक तो जरूर उठ जाय और यह जीवन-मान एक धोखा देनेवाली औसत न हो, वल्कि ऐसा हो, जो देश की आवादी की ९२·६ प्रतिशत मे कोई कहीं भी जाकर इसकी जाँच करके देख ले। योजना हर स्थान के प्राकृतिक साधनों और मानव-शक्ति का पूरा-पूरा उपयोग करके और जहाँ संभव होगा, स्वावलम्वी इकाइयों को सहकारी पद्धति

से जोड़कर वहाँ स्वावलम्बन बढ़ाने का यत्न करेगी। इसका मतलब यह है कि हर स्थान के लोग—केवल लोग ही नहीं, प्रत्येक परिवार के सदस्य भी—समझ-बूझकर और स्वेच्छापूर्वक योजना के बनाने और अमल में कदम-कदम पर एक-दूसरे के साथ सहयोग करेंगे। इसलिए ऐसी योजना इने-गिने विशेषज्ञों की मदद से राष्ट्र की राजधानी में बैठकर न तो बनायी जा सकती है और न उसका अमल केवल सरकारी सूत्रों के माध्यम से सम्भव है। इसलिए जब तक समस्त बेकार या अंशतः बेकार मनुष्यों को रोजी देनी ही है, इस निश्चय के साथ ऊपर बताये अनुसार योजना बनाकर उस पर अमल नहीं किया जायगा, तब तक केवल उत्पादन के लक्ष्य अंको मे निर्धारित करके यन्त्रों की सहायता से उन्हें पूरा कर देनेभर से इष्ट परिणाम नहीं आयेंगे। अतः योजना को अपनी सफलता के लिए सबसे पहले गाँवों की जनता के समझ और उत्साहभरे सहयोग पर निर्भर करना होगा। उसे केवल "सार्वजनिक सहयोग" से सन्तोष न मान लेना चाहिए। योजना खुद लोगो को बनानी और पूरी करनी होगी। इसका अर्थ यह हुआ कि सबसे पहले हर गाँव के लोगो को यह बात समझानी होगी कि क्यो सर्वोदय की समाज-व्यवस्था कायम करने की जरूरत है और इस योजना के आधारभूत सिद्धान्त क्या होंगे। अपने गाँवो की आर्थिक और सब तरह की उन्नति की योजना बनाने की न केवल विधि लोगों को बतानी होगी, बल्कि योजना के प्रत्यक्ष बनाने और अमल में उनकी सहायता करनी होगी। स्वावलम्बन और विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्तों के अनुसार आगे बढ़ना है, तो इसके सिवा दूसरी पद्धति हो ही नहीं सकती।

वही योजना वास्तविक और लोकतांत्रिक होगी, जब वह खुद उन लोगो द्वारा बनायी जायगी, जिन्हे अपनी मुसीबतों का ज्ञान है, जिन्हे अपने प्राकृतिक साधनों का और मनुष्य-बल का पता है, जिन्हे खुद योजना को कार्यान्वित करना है और जो हर कदम पर खुद अपने और ग्रामीणों के जीवन मे होनेवाले सुधार और भलाइयों को देखकर यह पता लगा सकते है कि हम सफलता की तरफ आगे बढ़ रहे है या नही। यह योजना ऐसी नही होगी, जिसके बनाने में तो लोगों का कोई हाथ न हो, किन्तु जिसको पूरा करने के लिए लोगो को याद किया जाता है। सच्ची योजना तो लोगो से कहेगी कि योजना बनाना और उसे पूरी करना, यह वास्तव में आपका ही अपना काम है।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, योजना का यह प्रयत्न होगा कि हर परिवार की आय पहले तो सालाना ३०००) तक बढ जाय। हम देख चुके है कि आय के अनुसार परिवारों की सख्या इस प्रकार है:

६००) तक वार्षिक आयवाले	१६३·२ लाख
६००) और १२००) के बीच की आयवाले	२४९·६ लाख
१२००) और १८००) ,, ,,	१६८·८ ,,
१८००) और २४००) ,, ,,	८३·२ ,,
२४००) और ३६००) ,, ,,	७६·२ ,,

इसलिए योजना पहले सबसे अधिक ध्यान सबसे कम आयवाले परिवारों की हालत सुधारने पर देगी और यत्न करेगी कि एक निश्चित समय के अन्दर उनकी आय उनसे ऊपर की सीढ़ी-वाले लोगो के बरावर हो जाय। फिर इन दो सम्मिलित वर्गो

की तरफ विशेष ध्यान देकर उनसे ऊपर की श्रेणी की बराबरी में लाने का यत्न किया जायगा। इस तरह करते-करते एक उचित अवधि के भीतर सबको ३०००) वार्षिक आय तक—जो कि एक साधारण जीवन-मान के लिए कम-से-कम आवश्यक आय मानी गयी है—लाने का यत्न किया जायगा। इस कार्यक्रम के अनुसार सबसे पहले ६००) वार्षिक से कम आयवाले वर्ग को हाथ में लेकर आगे बढा जायगा। परन्तु इसका अर्थ यह नही कि दूसरों के लिए कुछ नही किया जायगा। वास्तव में इन नीचे के स्तरों की वास्तविक आय तब तक बढ़ ही नही सकती, जब तक कि समाज का उत्पादन प्रत्यक्ष रूप से नहीं बढेगा। इसलिए योजना के सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए उत्पादन को इस तरह बढाने का यत्न किया जायगा कि सबसे नीचे के स्तरवाले परिवारो को आवश्यक मात्रा मे जरूरत की चीजे मिल सकें और उनका जीवन मान ऊँचा हो सके। इस तरह उत्पादन और रोजगारी साथ-साथ बढते जायँगे और इनका मेल न्यायपूर्ण बँटवारे के साथ बैठा दिया जाता रहेगा।

ऊपर के विवेचन से यह स्पप्ट होगा कि सर्वोदय की योजना, जो बेकारी को एकदम मिटाना चाहती है और उद्योगो का संगटन विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्तो के आधार पर करना चाहती है, धन-प्रधान नही, श्रम-प्रधान होगी।

इसी प्रकार अगर जनता को ही अपनी योजना बनानी है और उसीको उसे सफल भी करके दिखानी है, तो योजना का बुनियादी छोटा क्षेत्र एक सुगठित भौगोलिक भाग होगा। क्योंकि क्षेत्र के साधनों और जरूरतों की ठीक-ठीक और सही

जानकारी के आधार पर ही तो योजना वनायी जा सकती है। इसलिए योजना का वुनियादी क्षेत्र एक गॉव ही हो सकता है। अतः अपने गाँव की योजना खुद वही के लोग वनायेंगे और वही उसे कार्यान्वित भी करेंगे। हाँ, इसके लिए अगर किसी जानकारी, सलाह या यन्त्र चलानेवाले आदमियो की जरूरत होगी, तो इनको वे वाहर से ला सकते है। ग्राम का समाज यह प्रयत्न करेगा कि गॉव के तमाम लोगों को रोजगार मिल जाय और प्रत्येक परिवार की आय कम-से-कम ३०००) सालाना तक पहुँच जाय। सभव है, किन्ही-किन्ही गॉवो के पास पर्याप्त प्राकृतिक या अन्य साधन न भी हो और इस कारण वे उत्पादन का ऐसा कार्यक्रम अपने लिए न बना सकें। तव उन्हे किस प्रकार अन्य गाँवो या क्षेत्रों के साथ मिल जाना चाहिए और इसी प्रकार यदि क्षेत्र भी इन्ही कठिनाइयो का अनुभव करे, तो उन्हे दूसरे क्षेत्रो या प्रदेशों से मिलकर या ठेठ केन्द्र से किस प्रकार सहायता लेनी चाहिए और केन्द्र या प्रदेशो को किस प्रकार एक-दूसरे की सहायता करनी चाहिए तथा किस प्रकार उत्पादन की योजना राष्ट्र की जरूरतो को देखकर ही वनानी चाहिए इत्यादि के विषय मे हम ऊपर चर्चा कर ही चुके है। इसलिए गाँवों की योजनाओ का सारे देश की योजनाओ के साथ मेल वैठाने के लिए क्षेत्रीय, प्रादेशिक और राष्ट्रीय योजना-परिषदों को पूरा-पूरा यत्न करना होगा। इसलिए ग्रामीण योजना-समिति से ऊपर की तमाम योजना-परिषदों का यह कर्तव्य होगा कि उनकी मातहत की किसी भी समिति या परिषद् के क्षेत्र को प्राकृतिक या मनुष्य-वल के अभाव मे जीवन की किसी भी वस्तु के अभाव का कष्ट

न उठाना पड़े। यदि प्राकृतिक साधनों की कमी मनुष्य के यत्न से दूर होने लायक हो, तो उसे अवश्य दूर कर दिया जाना चाहिए। राष्ट्रीय और प्रादेशिक परिषदों को ध्यान रखना होगा कि पिछड़ेपन के कारण कोई क्षेत्र लगातार पिछड़ा हुआ न बना रहे।

अगले अध्यायों में बताया जायगा कि ग्राम-योजना-समितियाँ और प्रादेशिक योजना-परिषदें किस प्रकार अपनी योजनाएँ बनायें। इन अध्यायों में यह भी बताया जायगा कि हमारी कल्पना की समतायुक्त, शोषण-रहित और विकेन्द्रित आदर्श समाज-व्यवस्था की स्थापना करने के लिए हमारी वर्तमान आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक संस्थाओं में एवं सामाजिक सम्बन्धो मे तत्काल और क्रमश: क्या-क्या सुधार और परिवर्तन करना जरूरी है।

◆ ◆ ◆

: २ :

भूमि का स्वामित्व

जमीन और अन्य प्राकृतिक साधन उत्पादन के सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है। मनुष्य की बुनियादी जरूरतों में अन्न से बढ़कर कोई नही। जमीन सबके लिए अन्न पैदा करती है। इसी प्रकार वह करोड़ों को रोजगार भी देती है, जो जमीन पर काम करके सबके लिए अन्न पैदा करते है। खनिज और प्रकृति से मिलनेवाले अन्य पदार्थ उद्योगों का कच्चा माल हैं। किन्तु इनमें [illegible] करनेवाले भी तो मनुष्य ही होते है, जिन्हें शरीर-धारण के

लिए जमीन पर निर्भर रहना पड़ता है। अन्न, कपड़ा, मकान आदि के उत्पादन के लिए जमीन तथा·प्राकृतिक संपत्ति का किस प्रकार उपभोग किया जाता है तथा इसके सम्बन्ध में किसको क्या-क्या अधिकार हैं, यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है। क्योंकि इन अधिकारों पर से ही तो देखा जा सकता है कि अमुक समाज-व्यवस्था मे न्याय, अन्याय, समानता और विषमता की परिभाषाएँ क्या है। तो मनुष्य की सबसे जरूरी आवश्यकताएँ पूरी करने का सबसे बड़ा साधन जमीन है। अगर इस पर मुट्ठीभर आदमी कब्जा करके बैठ जाते है और अगर सिवा इस नाजायज कब्जे के जमीन के इस स्वामित्व तथा उससे मुनाफा कमाने के लिए उन्हे अन्य कोई अधिकार नही है, और दूसरी तरफ करोड़ों आदमी ऐसे है, जिनको अपनी रोजी कमाने के लिए दिन-रात पसीना बहाना पडता है, जमीन पर काम करने से मना किया जाता है अथवा काम लेकर पूरी मजदूरी नही दी जाती, तो ऐसे समाज में न तो किसीको न्याय मिल सकता है और न समाज के प्राकृतिक साधनो का पूरा-पूरा उपयोग सबके लिए हो सकता है। इसलिए न्याय और समानता की स्थापना करने की इच्छुक समाज-व्यवस्था में जमीन और प्राकृतिक साधन किसीकी खानगी संपत्ति नही बनने दिये जा सकते।

हम देख चुके है कि सर्वोदय-समाज-व्यवस्था में न कोई रोजी देनेवाला होगा, न कोई पानेवाला। हर आदमी स्वतन्त्र रूप से काम करेगा। हमने यह भी देखा कि उत्पादन के साधनों पर मुट्ठीभर आदमियो का स्वामित्व नही होगा। क्योंकि इससे उन्हें शोषण करने का अवसर मिल जाता है। इसलिए उस व्यवस्था में

जमीन ऐसी वस्तु नही रह जायगी, जिसका कोई मालिक कहा जा सके या जो उसे खरीद या बेच सके। वह एक प्राकृतिक सपत्ति है, जिस पर अधिकार समाज का होगा। समाज ही सबके लिए अन्न उपजाने के लिए उसका उपयोग करेगा।

इसका अर्थ यह नही कि आज गाँवों की जो सीमाएँ है, वे ज्यों की त्यों बनी रहेगी और इनके अन्दर रहनेवाले लोग अपने-आप उसके विश्वस्त बन जायँगे। हमारे बहुत-से गाँव जैसे-तैसे बस गये है। वे अच्छी आर्थिक इकाइयों के रूप में काम नही कर सकते। इसलिए सक्षम सामाजिक और आर्थिक इकाइयाँ बनाने के लिए उनको बढाना होगा, एक को दूसरे से जोड़ देना होगा या उनकी सीमाओं मे फेरफार करने होंगे। नि.सन्देह इसमे लोगो को योजनापूर्वक यहाँ का वहाँ और वहाँ का यहाँ भी बसाना होगा। हाँ, और खुद लोग भी अपनी इच्छा से एक गाँव से दूसरे गाँव मे जाकर बस सकेगे, बसेगे ही।

हर आदमी, जो अपने लिए और अपने परिवार के लिए अनाज उत्पन्न करने की इच्छा रखता हो या समाज के लिए पर्याप्त अन्न उत्पन्न करने मे मदद करना चाहता हो, उसे जमीन पर काम करने का अधिकार होना ही चाहिए। गाँव-सभा यह प्रबन्ध करेगी कि जमीन पर काम करने की इच्छा रखनेवाले हर ग्रामीण को इसके लिए जमीन का एक टुकड़ा मिल जाय। इस जमीन को वह गाँव की तरफ से अपने पास रखेगा, उस पर खेती करेगा और अपने परिश्रम का उपभोग खुद करेगा। परन्तु इस जमीन को वह बेच नही सकेगा, किसीको दे भी नही सकेगा, बल्कि गाँव की इजाजत के बगैर अपने उत्तराधिकारी को भी

मृत्यु-पत्र द्वारा नही दे सकेगा। यद्यपि जमीन पर कानूनी स्वामित्व तो गॉव का होगा, पर इसके अलावा जब तक वह जीयेगा और उस पर काश्त करता रहेगा, जमीन इसी तरह उसके पास रहेगी, मानो वह उसका स्वामी ही हो। यही नही, अगर उसके उत्तराधिकारियो मे से कोई जमीन पर काम करना चाहेगा और गॉव-सभा से विनती करेगा कि जमीन उसके पास रहने दी जाय, तो गॉव-सभा उसके पास जमीन रहने देगी—जब तक कि जमीन उसे न देने के लिए गॉव-सभा के पास कोई जोरदार कारण न हो।

हर गॉव-सभा अपने गॉव की सीमा मे आनेवाले रकबे का सर्वेक्षण करेगी। इसके बाद गॉव के चरागाह, वन-विकास, वृक्षारोपण, ईंधन तथा ओषधि के लिए एवं आवश्यक सार्वजनिक उपयोग की जमीन छोड़कर खेती की उपयोगी शेष जमीन को वह खेती करने की इच्छा रखनेवाले परिवारो में समानतापूर्वक बॉट देगी। परन्तु यह बॅटवारा हमेशा के लिए नही होगा। गाँव-सभा समय-समय पर गॉव की स्थिति और बॅटवारे का पुनर्निरीक्षण और जमीन का पुनर्वितरण करती रहेगी। समय-समय पर भूमि के पुनर्वितरण की यह पद्धति भारत के लिए नयी नही है। अन्य देशों मे भी यह पद्धति प्रचलित है। समय-समय पर यह वितरण इसलिए आवश्यक है कि लोगो के साथ अन्याय न हो, क्योंकि खेती करने की इच्छा रखनेवालो की संख्या में घटती-बढती होती ही रहती है। इस संख्या के घटने-बढ़ने के कारण कई हो सकते है, जैसे आबादी का बढ़ना, नये उद्योगो का खुलना, जिसकी वजह से नये और पूरक धन्धों का उपलब्ध हो जाना, और नयी जमीन का काश्त के लिए उपलब्ध हो जाना।

खनिज संपत्ति

खानें और अन्य खनिज संपत्ति पर भी खानगी स्वामित्व नही रहेगा। इसी प्रकार उनका स्वामित्व अगर केवल छोटी-छोटी गाँव-सभाओं के हाथों में भी रहे, तो वे भी इस साधन-संपत्ति का समाज के लिए पूरा-पूरा उपयोग न कर सकेंगी। इसलिए इनका प्रबन्ध प्रादेशिक या केन्द्रीय योजना परिषद् के हाथों में रहेगा।

खेती की पद्धति

जहाँ-जहाँ संभव होगा और लोग प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेंगे, खेती सहकारी पद्धति से होगी। परन्तु चकवन्दी करके सहकारी संस्थाओं मे शरीक होने के लिए जनता पर किसी प्रकार का दवाव—अप्रत्यक्ष अथवा सूक्ष्म दवाव भी नही डाला जायगा। आज भी खेती के कई काम किसान आपस में मिल-जुलकर कर ही लेते है। गाँव-सभा इस पद्धति को प्रोत्साहन देगी, और ऐसे सहयोग के नये मार्ग वना देगी, उसे संस्था का रूप देकर शास्त्रीय ज्ञान की मदद से व्यवस्थित भी कर देगी, जिससे वह आकर्पक और किसान के लिए अधिक लाभदायक वन जाय। ये सहकारी संस्थाएँ हर किसान को अच्छे औजार, वैल, सुधरा हुआ वीज और खाद उपलब्ध कर देगी तथा फसलों को वीमारी से वचाने और उपज को वेचने मे भी मदद करेंगी।

खेती के औजार और वैल किसान के अपने ही होंगे। खेती की क्रियाएँ किसान या तो खुद अपने परिवार के सदस्यों को साथ लेकर करेगा या गाव के लोगो की मदद ले लेगा। अथवा अगर वह किसी सहकारी संस्था या सामूहिक खेती मे शरीक होना

पसंद करेगा, तो सस्था के सदस्य मिलकर ये क्रियाएँ कर लेंगे।

जहाँ-जहाँ उचित और आवश्यक माना जायगा और जहाॅ-जहाॅ किसान खुद बडी संख्या मे चाहेगे कि खेती सहयोग-पद्धति से होनी चाहिए, वहाँ-वहाॅ सहकारी संस्थाएँ अथवा सामूहिक क्षेत्र स्थापन कर दिये जायँगे। परन्तु किसानों को ऐसी संस्थाओं में शरीक होने के लिए कभी मजबूर नही किया जायगा—गाँव के अधिकांश लोग उसके सदस्य बन जायेंगे, तो भी नही। इसके विपरीत जो अकेले ही खेती करना चाहेगे, उन्हे खुशी से अलग रहने दिया जायगा, बल्कि जितनी सभव होगी, सहकारी संस्थाएँ उसकी मदद ही करेंगी।

सहकारी सस्थाओं और सामूहिक खेती के क्षेत्रों में भी जो किसान अपनी जमीन, साज-सामान और अन्य साधन सम्मिलित सपत्ति मे मिलाकर सहकारी सस्था या सामूहिक खेती का क्षेत्र वनायेगे, वे भी इस वात का पूरा-पूरा ध्यान रखेगे कि खेती के तमाम काम-काज की हालत कही बिगड़ने न पाये—कही वहाॅ भी कोई मालिक न वन जाय और शेष मजदूरो की हालत में न पहुॅचा दिये जायँ।

जब कभी गाॅव की खेती के रकबे में वृद्धि होगी, तो गाॅव-सभा या तो प्रत्येक किसान के रकबे में वृद्धि कर देगी या नये रकबे की काश्त खुद ही अपनी देखभाल मे करायेगी।

भारत जैसे घनी आबादीवाले देश में यदि बढती हुई आबादी के साथ कदम मिलाते हुए चलना है, तो यहाॅ की फी एकड़ औसत उपज को भी बढाना ही होगा। ऐसी बढ़ी हुई उपज तो तभी उपलब्ध हो सकती है और कायम रखी जा सकती है, जब

खेती गहरी हो और उसके साथ पशु-पालन भी हो। बड़े-बड़े विशाल खेत और राक्षसी ट्रैक्टर जैसी मशीनें हमारी समस्या को हल नही कर सकते। प्राकृतिक साधनों और मनुष्य-बल का आज ठीक-ठीक उपयोग नही हो पा रहा है। खेती की औसत उपज वढाने और खेती की विविध क्रियाओं से पूरा लाभ उठाने के लिए खेती की गहरी पद्धति का अवलम्वन हमे करना होगा। सुधरी हुई पद्धतियाँ और औजार तथा अच्छी खाद और वीजो का भी उपयोग करना होगा। मिश्र खेती से, अनाज और घास की फसलों की फेर-वदल करने से वहुत लाभ हो सकता है। पश्चिमी यूरोप के कई देशो ने और सयुक्त राष्ट्र के पूर्वी राज्यों ने इन उपायों से खूब लाभ उठाया है। हमारे यहाँ भी इससे जमीन की उर्वरा शक्ति वढ़ेगी, उपज की औसत वढेगी और हमारे मवेशी के लिए खूव ताकत देने-वाली खूराक मिल सकेगी।

यन्त्रो का उपयोग मनुष्य की तकलीफ कम करने और अधिक काम लेने की दृष्टि से किया जा सकता है। परन्तु ग्राम-सभा ऐसे किसी यन्त्र का उपयोग नही करेगी, जो केन्द्रीकरण की ओर ले जानेवाला होगा या वेकारी को पूरी तरह मिटाने में मददगार न होगा या शोषण की गुजाइश रखेगा या भूमि की उर्वरा-शक्ति कम करेगा या खेती पर काम करनेवालों को पारिश्रमिक लेकर काम करनेवाले किराये के मजदूर की हालत में पहुँचानेवाला होगा।

हाँ, इसके विपरीत जमीन की उपज वढ़ाने और काम को आसान करने के लिए ग्राम-सभाएँ ऐसे यन्त्रों का उपयोग अवश्य

करेंगी, जो एक भी मनुष्य को बेकार न बनाते हुए सबके परिश्रम को बचानेवाले होंगे, जो या तो उस प्रदेश के ही बने हुए या सुलभ होंगे अथवा कम-से-कम टूट-फूट होने पर जिनको वही सुधारा जा सकेगा, और जिनका उपयोग किसान खुद कर सकेंगे या सहकारी संस्थाओं की सहायता से उससे लाभ उठा सकेंगे। ऐसे यन्त्रो का उपयोग मनुष्य की आजादी को नही छीनेगा या उसका शोषण नही करेगा या गाँव अथवा प्रदेश को परावलम्बी नही बनायेगा।

जमीन का उपयोग और प्रबन्ध

अपनी सीमा के अन्दर सारी जमीन के प्रबन्ध और खेती की जिम्मेवारी गाँव-सभा की होगी। तदनुसार वह समय-समय पर जमीनो का बँटवारा करेगी। दी हुई जमीन का और उसके पानेवालों का लेखा रखेगी, जिसमें काश्तकार को किन शर्तो पर जमीन दी गयी, इसका उल्लेख भी होगा। इसी प्रकार गाँव-सभा जमीन को ठीक रखने, खाद देने, जगल बढाने और सुधारने का भी ध्यान रखेगी। उसे इस बात की भी सावधानी रखनी होगी कि मिट्टी के बहाव के कारण कही जमीन कटती तो नही जा रही है। समाज की खेती सम्बन्धी उपज का ठीक-ठीक उपयोग करने के हेतु से गाँव-सभा अपने लिए विकास का कार्यक्रम भी बनायेगी, उपज के लक्ष्य कायम करेगी और इनकी पूर्ति किस प्रकार हो रही है, इसका निरीक्षण करती रहेगी। गाँव की जरूरतो को ध्यान मे रखते हुए कौन चीज कितनी पैदा की जाय, इस सम्बन्ध में गाँव-सभा सारे गाँव के लिए पैदावार की एक योजना बनायेगी। यह बनाते समय वह अपने क्षेत्र के प्राकृतिक साधनों, सबको युक्त आहार मिल जाय, इस बात का और

अन्न तथा कपड़े के बारे में गाँव को स्वावलम्बी बनना है, इस बात का भी ध्यान रखेगी।

इसलिए सबसे पहले अपने लिए अन्न और कपड़ा पैदा करने पर ध्यान दिया जायगा। अगर गाँव की जमीन इतनी अच्छी है कि वह इन दो चीजों सम्बन्धी जरूरतें पूरी करके इतनी अधिक पैदावार भी दे सकती है कि जिससे इस प्रदेश के कम उपजवाले गाँवों की जरूरतें भी पूरी हो जायँ, तो गाँव सभा शेष जमीन का उपयोग व्यापारी फसलें लेने के काम में कर सकती है, बशर्ते कि ये चीजे स्वास्थ्य के लिए हानिकर न हों।

संक्रमण-काल में गाँव-सभाओं और प्रादेशिक अधिकारियों को ऐसे उपाय काम मे लाने होंगे, जिससे व्यापारी चीजों की फसलें पैदा करने का लालच लोगों को इतना अधिक न हो जाय कि वे स्थानीय जरूरत की चीजों को पैदा करने की परवाह ही न करें।

कुछ गाँव ऐसे भी होंगे, जहाँ खाद्यान्नों की फसलें पैदा नही हो सकती। किन्तु जहाँ अन्य प्रकार की पैदावार अच्छी हो सकती है, वहाँ ऐसी ही चीजे बोयी जायँ। इसी प्रकार कहीं-कहीं कोई खास प्रकार की चीज पैदा करना बहुत महँगा पड़ता हो, तो ऐसी जमीनो पर अधिक आसानी से पैदा होनेवाली फसलें बोकर उनके बदले मे आवश्यक चीजें ली जा सकती है। इस प्रकार अपने क्षेत्र में उपलब्ध साधनो का समाज के हित मे अच्छे-से-अच्छा उपयोग करने का यत्न होना चाहिए। मतलब यह कि अपने गाँव के लिए फसलों की योजना बनाते समय गाँव-सभा को इन सब बातों का विचार कर लेना चाहिए।

अलग-अलग अर्थात् व्यक्तिगत, सहकारी या सामूहिक—सब प्रकार की खेती करनेवालों को गाँव-सभा के द्वारा बनायी इस योजना का पालन करना होगा। अलग रहकर खेती करने-वालों को जमीन लेते समय अन्य शर्तो के साथ एक शर्त यह माननी होगी कि वे ग्राम-योजना का पालन करेंगे। अगर वह इस शर्त का पालन नही करेगा या जमीन का इस तरह उपयोग करेगा, जो योजना के उद्देश्यों के विपरीत हो, अथवा जमीन को अच्छी रखने और सुधारने की शर्तो का पालन भी नही करेगा, तो गॉव-सभा को अधिकार होगा कि वह उससे जमीन वापस ले ले। ग्राम-योजनाओं का समन्वय करनेवाली प्रादेशिक परिषदों और अधिकारियों को खास तौर पर ध्यान रखना होगा कि जिन गॉवों में जिस-जिस पैदावार के लिए प्राकृतिक अनुकूलताएँ हो, वे इन चीजों की पैदावार जितना भी सम्भव हो, अधिक मात्रा में करे, ताकि यह बचत शहरों और कमीवाले क्षेत्रों की जरूरते पूरी कर सके।

खातों का आकार

एक किसान के पास कितना बड़ा खाता हो, इसका निर्णय सबसे बड़ी या प्रादेशिक योजनाओ का समन्वय करनेवाली परिषदे भी मनमाने तौर पर नही कर सकती। गॉव-सभाएँ सबसे पहले अपने क्षेत्र की काविल काश्त जमीन का रकबा देखेंगी। फिर जमीन पर काम करने की इच्छा रखनेवालों की सख्या मालूम कर लेगी। इसके बाद गॉव के शामलाती उपयोग के लिए जितनी जमीन की जरूरत होगी, उतनी अलग निकाल

बड़े खेत बनाने से ही संभव होगी, जैसे कि अन्यत्र तानाशाहियों में यत्न किया गया है। इस दूसरी पद्धति के भयंकर दुष्परिणामों से संसार परिचित है ही। वहाँ पर किसानों ने इस जबर्दस्ती का इतना डटकर मुकाबला किया था कि उसको दबाने के लिए शासन को बहुत बड़ी संख्या मे हत्याकाण्ड करने पड़े। लाखो-करोड़ों किसानों को वहाँ अपार मुसीबतें उठानी पड़ी थी, जिसके परिणामस्वरूप वहाँ की सारी अर्थव्यवस्था खतम हो गयी थी। तब उसको फिर से जिलाने के लिए समय-समय पर न जाने कितनी बार कदम पीछे हटाने पड़े, कड़वी घूँटें पीनी पड़ी और चालों को टेढी-मेढ़ी करना पड़ा।

इसी प्रकार कानून की भी अपनी मर्यादाएँ है। वह तो केवल बहुसंख्यक जन-समाज की इच्छाओ या धारणाओ को कानून की किताब मे स्थान देकर किसी वस्तु को सरकारी नियम या मंजूरी का रूपमात्र दे सकता है। परन्तु यदि कानून यही प्रयोग किसी ऐसी बात के लिए करने लगे कि जिसे बहुजन-समाज की स्वीकृति या कम-से-कम अनुमति नही मिल पायी है, तो इसका परिणाम ठीक नही होगा। लोग उसे नही मानेंगे, विरोध करेंगे और अपना सहयोग खीच लेंगे, तब इस चीज को मनवाने के लिए शासन को तानाशाहों के जैसे उपाय बरतने पड़ सकते हैं। इसलिए किसी सामाजिक परिवर्तन का सबसे सरल और उत्तम उपाय तो यही है कि समाज के विचारों को ही पलटने का यत्न किया जाय। इसका उपाय है सत्याग्रह—अर्थात् समझाना-बुझाना और असहयोग।

भूदान और खासकर ग्रामदान की प्रवृत्ति इसीका प्रयत्न

है। खानगी संपत्ति खासकर जमीन की सपत्ति की कल्पना में आमूल और चिरस्थायी क्रान्ति करने की उसमें सामर्थ्य है। जव यह हलचल जोर पकड़ेगी और समाज मे क्रान्ति करने के इच्छुक बहुत-से लोग इसमें तन-मन से काम करने लग जायँगे, तब जमीन की स्वामित्वसम्बन्धी पुरानी कल्पना कमजोर हो जायगी और लोगों का दिल यह मानने के लिए तैयार हो जायगा कि जमीन वास्तव मे समाज की ही सपत्ति है।

जहॉ-जहॉ भी गॉव के जमीनवाले किसान इस ग्रामदान के आदर्श को स्वीकार कर ले, वहॉ तुरन्त गॉव की सारी अर्थ-व्यवस्था और सामाजिक जीवन को व्यक्तिगत स्वामित्व की कल्पना मे हुए इस क्रान्तिकारी परिवर्तन के अनुरूप बनाने का यत्न शुरू हो जाना चाहिए।

जव गाँव के जमीदार एक अच्छी सख्या मे इस आदर्श को स्वीकार कर लेगें, तो वहॉ एक शक्ति पैदा हो जायगी और उससे जमीन के समाजीकरण की गति को बड़ा बल मिलेगा। व्यक्तिगत संपत्ति और सामाजिक न्याय साथ-साथ नही चल सकते, यह माननेवाले अपनी जमीनो का स्वामित्व समाज को सौप देगे।

इस बीच, जो यह विश्वास करते है कि जमीन के स्वामित्व की प्रथा कानून बनाकर धीरे-धीरे समाप्त करनी [illegible] उन्हें चाहिए कि वे भी इस प्रगति को स्वीकार [illegible] बनाते जायँ। उदाहरणार्थ, जमीदारी की [illegible] कारत नहीं करते है, उनके पास जमीन नही [illegible]

विधवाएँ और पंगु व्यक्ति इसके अपवाद होंगे), शासन और किसान के वीचवालों को हटा देना, खेती की अधिक-से-अधिक जमीन रखने की सीमा, मुनाफे या बँटाई पर जमीन न देना, ये सब जमीन के स्वामित्व को समाप्त करने और उसे समाज के अधिकार में देने की दिशा मे एक-एक कदम है।

जब तक इन सुधारो पर विचार हो रहा हो और इनके मजूर होने में देर हो, तो दूसरो की जमीन एक निश्चित समय से जोतनेवाले किसानों के लिए रक्षात्मक कानून वना दिये जाने चाहिए ओर आज्ञाएँ जारी कर दी जानी चाहिए कि खातेदार किसी शिकमी काश्तकार को वेदखल न कर सकेगा, जब तक कि वह (खातेदार)खुद उस जमीन को काश्त न करनेवाला हो। इसके वाद एक दूसरा कानून भी जमीन के पुर्नवितरण के बारे में वनाया जाय, जिसके द्वारा किसीके भी पास इतनी अधिक जमीन न रहने दी जाय कि वह दूसरे का शोपण कर सके। जमीन के स्वामित्व को खतम करने की दिशा में वह पहला कदम होगा। इसी प्रकार ग्रामीकरण की दिशा में अधिक-से-अधिक जोतों की हदवन्दी कायम करना भी एक आवश्यक कदम है। यहाँ यह वात भी स्मरण रखनी चाहिए कि जोतों का सीमा-निर्धारण यदि अनुचित रूप से अधिक हो, तो इससे भूमि के पुर्नवितरण मे कठिनाई ही नहीं होगी, वरन् यह एक प्रकार का सिरदर्द भी होगा। पशुओं की सहायता से और उस क्षेत्र में प्रचलित औजारों की मदद से आदमी जितनी जमीन जोत सकता है, वही जोत की सीमा मानी जानी चाहिए। इस प्रकार जमीन की किस्म और खेती की हालत

देखकर ही हर प्रदेश में एक परिवार के पास रहने दिये जाने-वाले रकबे का निश्चय किया जायगा।

परन्तु स्मरण रहे कि केवल अधिकतम रकबे की सीमा निश्चित कर देना ही काफी नही है। केवल इससे न तो स्वामित्व की भावना चली जायगी, न बेजमीन उम्मीदवारो को जमीन ही मिल जायगी। इसी प्रकार कम-से-कम जमीन कितनी रहे, यह सीमा मुकर्रर कर देनेभर से भी बेजमीनों को अपने-आप जमीन नही मिल जायगी। हॉ, इससे जमीन के और अधिक छोटे टुकड़े होने से रुक जायँगे और बिखरे टुकड़ों की चकबन्दी करने मे इन कानूनो से जरूर काफी मदद मिल जायगी। परन्तु बेजमीनो को जमीने दिलाने के लिए दूसरे उपाय भी करने होगे। उदाहरणार्थ, अगर हम चाहते है कि जमीन सबको थोड़ी-थोड़ी मिले, तो एक आदमी के पास रहने दी जानेवाली जमीन के अधिकतम और न्यूनतम रकबेवाला कानून बनाने से अगर पहले नही तो कम-से-कम उसके साथ-साथ एक ऐसा कानून भी बनाया जाय, जिसके अनुसार बडे काश्तकारो की श्रेणियाँ मुकर्रर करके प्रत्येक श्रेणी से क्रमश· जमीने प्राप्त करने का कार्यक्रम वना दिया जाय। इसका आधार आय-कर की भॉति बड़े रकवेवालो से अधिक रकबा और क्रमशः कम रकवेवालों से कम रकबे की किश्ते रखी जायँ। ये रकबे अधिकतम रकबेवाला कानून लागू होने से पहले भी प्राप्त किये जा सकते है।

इस तरह जमीन प्राप्त कर लेने और मध्यस्थो की प्रथा को मिटा देने के और इसी प्रकार यह नियम वना देने पर कि जो खुद जोतेगा, उसीके पास जमीन रहेगी, आज के कुछ खाते-

दार या तो अपनी आय का साधन एकदम खो बैठेंगे या उनकी आय में भारी कमी हो जायगी। जिनके पास निश्चित रकवे से अधिक जमीन नहीं होगी, उनका कोई नुकसान नहीं होगा, अगर वे जमीन खुद जोतेंगे या कम-से-कम जुताई में प्रत्यक्ष भाग लेंगे। इसलिए ऐसे लोग वहुत कम होंगे, जिनको इस नयी व्यवस्था में जमीन खोनी पड़ेगी। फिर भी इनको पुनर्वास-शुल्क के रूप में इस जमीन का मुआवजा दिया जा सकता है। यह मुआवजा जमीन की कीमत या कीमत के लगभग हो, इस प्रकार नकद के रूप मे नहीं होगा। जमीन के वदले में रोजगार दिया जा सकता हैं, जिसमे योजना द्वारा निश्चित एक परिवार के निर्वाह के लिए कम-से-कम आवश्यक आय और पिछले अध्याय मे वतायी अधिक-से-अधिक आयवाले वर्ग की आय के वीच प्रत्येक परिवार की पात्रता के अनुसार आय हो। पुनर्वास-शुल्क के रूप मे प्रत्येक व्यक्ति को जो कुछ दिया जायगा, उसके लिए सर्वमान्य सिद्धान्त नही वनाया जा सकता; वह तो प्रत्येक व्यक्ति के प्रश्न पर पृथक्-पृथक् विचार करके ही निश्चित किया जा सकता हैं।

इस व्यवस्था के अन्दर प्राप्त की गयी जमीन का वितरण गाँव-सभा द्वारा किया जायगा।

वन

जमीन की कटती रोकने, और वर्षा वरावर आती रहे, इसलिए यह आवश्यक है कि जमीन के पूरे रकवे के ३३ प्रतिशत रकवे में जंगलात होने चाहिए। यह उद्देश्य इतने से ही नहीं पूरा हो सकता, यदि यह ३३ प्रतिशत जगलवाली भूमि कुछ

विशेष प्रान्तों में ही केन्द्रित कर दी जाय और अन्य प्रान्तों में जगलो के कटने तथा मरुभूमि के विस्तार को रोकने का कोई प्रयास न हो। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रत्येक क्षेत्र मे जगलो का कटना रोककर तथा नये-नये जगल लगाकर आवश्यक भूमि मे जंगलों की व्यवस्था की जाय।

परन्तु इस वात को जानते हुए भी वन-नीति का सचालन करनेवाले अधिकारी तात्कालिक लाभ से प्रभावित होकर इस वुनियादी सिद्धान्त की उपेक्षा करते रहे है। इस लाभ के लालच ने हमारी वन-सपत्ति का वड़ा नाश किया है। पर्वत नंगे कर दिये गये है और वेशकीमती इमारती लकड़ी या तो विदेशो मे भेज दी गयी या जलाकर उसका कोयला बना दिया गया है, जो उससे भी बुरा है। वनो का शोषण करने, उन्हे वसाने या अन्य प्रकार से उनसे कमाई करने के प्रयत्न तो जरूर हो रहे है। परन्तु जंगलों को वढाने का ऐसा यत्न कही भी होता दिखाई नही दे रहा। खेती और आवादी को वढाने की धुन मे अनेक जगह वन-सपत्ति का अन्धाधुन्ध नाश किया गया है। इसके कारण मिट्टी के वह जाने से जमीन के कटने की समस्या वड़ी गभीर वन गयी है।

इस समस्या का मुकावला करने के लिए प्रादेशिक अधिकारियो को जमीन की रक्षा और वन-सवर्धन की एक दीर्घकालीन नीति वनानी होगी। यही नहीं, समस्त राष्ट्र को अपनी वन-संपत्ति की रक्षा और उपयोग के वारे मे दूरदर्शिता के साथ विचार करके एक निश्चित नीति वना लेनी चाहिए और प्रादेशिक कार्यक्रमो को उसके साथ समन्वित कर लेना चाहिए।

प्रत्येक गाँव जमीन का एक टुकड़ा इंधन की लकड़ी देनेवाले पेड़ों के लिए और एक टुकड़ा वनौषधियों के लिए रक्षित रखे।

जमीन की रक्षा

चूँकि जमीन का स्वामित्व गाँव-सभा के हाथों मे होगा, इसलिए उसका कर्तव्य होगा कि वह जमीन की रक्षा करे और मिट्टी बहकर जमीन कटने न पाये, इसका ध्यान रखे। इसी प्रकार वह विशेषज्ञों की मदद लेकर जमीन की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने का यत्न करे और इसमे अनेक गाँव-सभाएँ मिलकर काम करे। मिट्टी के बहाव को बचाने के लिए बाँध बनाना, जमीन का स्तर समान करना, कही-कही जमीन की समतल को पूरी तरह से ऊँची कर देना, जगह-जगह जंगल लगा देना, ये उपाय हो सकते है। इसी प्रकार जमीन की उपजाऊ शक्ति बढ़ाकर किस्म सुधारने के लिए अच्छी खाद देना और फसलों को बदल-बदलकर बोना—ये उपाय हो सकते है।

खेती के विशेषज्ञ मिट्टी के बहाव को रोकने और जमीन को अधिक उपजाऊ बनाने के लिए इस तरह कई उपाय कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में कहाँ-कहाँ क्या-क्या किया जाना चाहिए, इसकी नीति और कार्यक्रम निर्धारित करने का काम खेती-अनुसन्धान-केन्द्रों का होगा। वे ग्रामीण जनता को भी इस विषय की जानकारी देकर शिक्षित करेगे। इसी प्रकार गांव-सभाओं का यह कर्तव्य होगा कि वे किसानो के पास उपर्युक्त कारणों से जमीन बिगड़ तो नहीं रही है, इसका भी ध्यान रखें।

फल और सब्जी की खेती

फसलो के बारे मे गॉव-सभा जो योजना बनायेगी, उसका एक लक्ष्य यह भी होगा कि समाज को सब प्रकार का आवश्यक पोषण—युक्ताहार देनेवाली फसलें ग्राम में ही पैदा हो जाया करे। इस प्रकार आवश्यक अनाज और दूध के अलावा प्रत्येक गाँव को अपने लिए आवश्यक मात्रा मे फल और सब्जी भी पैदा कर लेनी चाहिए। हर परिवार से कहा जायगा कि वह जमीन का एक छोटा-सा टुकड़ा फल, सब्जी और कपास के पौधे के लिए सुरक्षित रखे। जब ग्रामो की सीमाओं का संशोधन हो चुकेगा और लोग अपनी-अपनी इच्छा और सुविधा के अनुसार नये सिरे से योजना के अनुसार बस जायँगे, तब शायद यह भी प्रबन्ध हो सके कि प्रत्येक परिवार के लिए उसके मकान से लगा हुआ एक छोटा-सा बगीचा हो, जिसके अन्दर फलो और सब्जियों की खेती हुआ करेगी।

ग्राम-सभाएँ भी अपनी शामलाती जमीन मे से कुछ हिस्से मे फलो और सब्जी की खेती किया करेगी और इससे कमीवाले हिस्सो की तथा शहरों की जरूरतो की पूर्ति होती रहेगी।

आबपाशी

जो भी योजना खेती का रकवा और फी एकड़ पैदावार बढाना चाहती है, उसे सिचाई का प्रबन्ध करना ही होगा। अभी देश के अन्दर करीब ३२,७८,००,००० एकड़ मे खेती हो रही है। इसके अन्दर परती की जमीनें भी शामिल है। इसमें वहुत-सा हिस्सा ऐसा है, जहाँ वर्षा नियमित रूप से और पर्याप्त नहीं

होती और लोगों को सिचाई के अव्यवस्थित साधनों पर निर्भर रहना पड़ता है। बरसात के पानी को एकत्र करके उसका ठीक-ठीक उपयोग करने का प्रयत्न बहुत कम हुआ है। इसी प्रकार जमीन के अन्दरवाले जलस्रोतों का लाभ भी लोगों को बहुत कम मिल पा रहा हैं। अभी-अभी अर्थात् सन् १९५२ तक देश में आवपाशी का कुल रकवा, जिसे सिचाई के छोटे-बड़े साधनों से जल मिल रहा है, ५,१४,६६,००० एकड़ था। इसमे से १,८५,३०,००० एकड़ों की सिचाई राज्यों की नहरों द्वारा, २६,७१,००० एकड़ों की खानगी नहरो द्वारा, ८६,२६,००० एकड़ों की तालाबों से, १,५७,४७,००० एकड़ों की कुँओं के द्वारा और ५६,५०,००० एकड़ो की सिचाई दूसरे साधनो से होती है। शेष २७·०४ करोड़ एकड की खेती वर्षा के पानी पर ही निर्भर रहती है। यह सच है कि सिचाई का रकवा वढाने का यत्न हो रहा है। परन्तु खेती के सुधार के लिए इससे कही वड़ी और वैज्ञानिक योजना की जरूरत है। इतना वड़ा काम यहाँ-वहाँ वडी-वड़ी नदी-घाटी-योजनाएँ वना देने और विजली पैदा करनेवाले राक्षसी यन्त्र खडे कर देने से नही हो सकेगा। इसके लिए देश की तमाम नदियों का सर्वेक्षण करके नहरों का जाल सारे देश में फैला देना होगा, जो सिंचाई और आवागमन के लिए सस्ते रास्तों का भी काम देंगी। इतना करने पर भी बहुत-सा प्रदेश ऐसा रह जायगा, जहाँ की जनता को वर्षा के पानी पर या कुँओं की सिचाई पर ही खेती के लिए निर्भर रहना होगा। इन भागों का मुख्य आधार तालाब और कुएँ ही रहेंगे, इसलिए पुराने तालावों की मिट्टी निकालकर उन्हें गहरा

करना होगा। नये कुएँ खोदने होगे और जगह-जगह बंधों को ऊँचा कर या नये बॉधकर बरसात के पानी को रोकना होगा। आज तो गाँवो मे पीने के लिए शुद्ध जल के कुएँ भी पूरे नही है। इसलिए काफी सख्या मे नये कुएँ बॉधने होंगे और जगह-जगह नलकूपों द्वारा पानी का पता लगाकर पानी के साधन निर्माण करने होगे। कम-से-कम हर पॉच एकड़ पर एक कुआॅ होना चाहिए।

स्पष्ट है कि इतनी बडी समस्या केवल व्यक्तिगत प्रयत्नों से हल नही हो पायेगी। अधिकांश किसान ऐसे है कि अगर उन्हे राज्य की तरफ से मदद नही मिली, तो वे खुद सिंचाई के साधन नही जुटा पायँगे। इसलिए इस प्रश्न को गाँव-सभाएँ और प्रदेश-अधिकारियों को मिलकर हल करना होगा। तालाबों की मिट्टी निकालकर उन्हे गहरा करना, कुएँ बनाना, बॉध बॉधना वगैरा काम गॉव-सभाएँ कर सकती है। परन्तु बड़ी नदियो को रोककर उनसे नहरे निकालने का काम प्रादेशिक परिषदों को करना होगा।

बड़ी-बड़ी नदियो पर बाँध बॉधकर नहरे निकालने के साथ बिजली पैदा करने का काम भी अक्सर जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार वे बहुकामी योजनाएँ कहलाती है, जिनसे जनता को सिचाई के लिए जल और मकानो के लिए रोशनी और उद्योगों के लिए सस्ती शक्ति भी मिल जाती है। इस तरह एक ही योजना से दोनों, तीनो काम निकाल लेना अच्छा है। परन्तु अगर इनमें से एक चीज देहात की गरीब जनता के लिए महँगी—उनकी शक्ति से बाहर पायी जाती है और दूसरी—बिजली—केवल दूर के शहरो की जनता के लिए ही पैदा करके वहाँ भेज दी

जाती है, ग्रामीण जनता उससे लाभ नही उठा सकती, तो ये वड़ी-वड़ी योजनाएँ ग्रामीण जनता के लिए मुश्किल से उपयोगी रह जाती हैं।

यह एक दुर्दैव की बात है कि पन-बिजली की योजनाओं को आर्थिक दृष्टि से लाभदायक बनाने के लिए यह आवश्यक माना जाता है कि उनको सिचाई की बड़ी-बड़ी योजनाओं के साथ जोड़ देना चाहिए, जिनमें वहुत बड़े-वड़े वॉध बनाने पड़ते है। अन्दाज लगाया गया है कि आसपास के साधारण प्रदेश की जरूरतों के लायक पन-विजली पैदा करने के लिए प्रवाह को पचीस फीट की ऊँचाई मिल जाना काफी है। जापान मे इस तरह के यन्त्र जगह-जगह लगाये गये है। हमारी ग्रामीण जनता को बिजली का लाभ इस योजना से ही मिल सकता है। इससे दो लाभ होंगे। एक तो इसके लिए वड़ी-वडी पूँजियों की जरूरत नही होगी और प्रवन्ध भी महँगा नही पडेगा, सुविधा-पूर्वक हो सकेगा। इसके अलावा विजली के उत्पादन में विकेन्द्री-करण के साथ-साथ अपने-आप उद्योग-कारखानों का भी विकेन्द्री-करण हो जायगा।

जव जमीन को सिंचाई का लाभ मिलने लगेगा, तो उपज अपने-आप वढ जायगी। और जहाँ जमीने बेचना मना नही है, वहाँ उसकी कीमतें भी वढ जायँगी। किंतु सिंचाई की इतनी सारी सुविधाएँ निर्माण कर देने के वाद भी योजना यह विश्वास नही दिला सकती कि सिचाई का लाभ सव किसानों को मिल ही जायगा। अतः स्वभावतः ऐसी जमीनें वच जायँगी, जो सिंचाई से वञ्चित रहने के कारण अपेक्षाकृत कम उपज देंगी। सिंचाई

के लाभो के इस असमान वितरण के कारण अगर खेती की आय में आनुषगिक विषमता नही होने देनी है, तो गॉव-सभाओ को कोई ऐसा उपाय करना होगा, जिससे सिचाई से वंचित जमीनो-वाले किसानो की कमाई की पूर्ति हो सके । जब जमीन पर किसीका स्वामित्व नही रहेगा और ग्राम-सभा समय-समय पर जमीन का बँटवारा करती ही रहेगी, तब वह उम्मीदवार किसानो को एक टुकड़ा सिचाईवाली और एक टुकड़ा सूखी जमीन में दे सकती है । परन्तु कुछ ऐसे हिस्से रहेंगे, जहॉ यह करना संभव नही होगा । ऐसे भागो मे गॉव-सभा सिचाईवाली जमीन पर अतिरिक्त कर लगा देगी और इसकी आय का उपयोग सूखी जमीनवाले किसानो की कमी की पूर्ति मे तथा उनकी सहूलियते बढाने मे करेगी ।

जब तक जमीनो पर व्यक्तियों का खानगी स्वामित्व रहेगा, तब तक आयों की विषमता को मिटाने के लिए सिचाई-वाली जमीन पर विशेष कर लगाया जा सकता है ।

फसलों का बीमा

देश के बहुत-से हिस्सो मे उपज की औसत बहुत कम है और दूसरे हिस्सो मे फसले बीच-बीच मे खराब हो जाती है । हमारे देश मे यह एक साधारण-सी बात हो गयी है । परन्तु अगर ठीक से योजना वनाकर इस बुराई की तरफ ध्यान दिया जाय, तो इस पर कावू पाया जा सकता है । जब पेड़-पौधे लगाकर, जगह-जगह बध बॉधकर और जमीन को समतल वनाकर मिट्टी के बहाव को रोक दिया जायगा, इसी प्रकार वैज्ञानिक

तरीके से खाद देकर जमीन की उर्वरा शक्ति बढ़ा दी जायगी और किसानों को दूसरी अनेक प्रकार की खेती सम्बन्धी सहूलियतें मिलने लग जायँगी, तो निश्चय ही जमीन की उपज बढ़ेगी और फसलों का बिगड़ना बहुत कम हो जायगा। जब बड़ी-बड़ी नदियो को काबू में कर लिया जायगा और बाढों के पानी को नहरों में बाँटकर खेती के लिए उसका अधिकाधिक उपयोग होने लगेगा, तो बाढ़ों का खतरा भी कम होता जायगा। उधर गाँव-सभाएँ भी फसलों को बीमारियो से बचाने की उपाय-योजना करने लगेंगी और अन्य प्रकार के हानिकर पौधों आदि से उनकी रक्षा करना सीख जायँगी। परन्तु यह सब कर लेने पर भी हम एकदम निश्चिंत नही हो जायँगे, क्योकि जो भाग पूर्णत. बरसात पर ही अवलम्बित होंगे अथवा खतरनाक बाढ के क्षेत्रों में होंगे, वहाँ प्रकृति की सनको के कारण लोगों को कष्ट होगा ही। ऐसे भागों में फसलो का बीमा करा देने की प्रथा शुरू कर देना लाभदायक होगा। इससे सकट के वर्षो मे किसानों को कुछ राहत मिल जाया करेगी। इसके अलावा गाँव-सभाओं को अपने सग्रह में हमेशा एक वर्ष तक काम दे दे, इतना गल्ला भरकर रखना चाहिए। वह भी मुसीबत के वर्षो मे काम दे देगा। इस अनाज बैंक के लिए अनाज के रूप में गाँव के लोगो से ही चन्दा लिया जाय, क्योकि आखिर यह उन्हींको काम देगा। प्रदेश के योजना-अधिकारी भी ग्राम-सभाओं की इस अनाज की बैंकों का उपयोग किसी अकालपीड़ित भाग को राहत पहुँचाने के लिए कर सकते हैं, जब कि उनका अपना संग्रह बार-बार अकालों के कारण नाकाफी साबित हो।

जिस समाज मे प्रत्येक मनुष्य सारे समाज के लिए उत्पादन करता है और इसके बदले में उसकी जरूरतों की पूर्ति समाज करता है, वहाँ प्रत्येक किसान के खेत की उपज का बीमा करने का सवाल ही खडा नही होता। हाँ, जहाँ किसान को पूरी तरह से बाजार में मिलनेवाली अपनी उपज की कीमत पर ही निर्भर करना पड़ता है, वहाँ जरूर अलग-अलग बीमे की जरूरत हो सकती है। परन्तु उस आदर्श स्थिति को पहुँचने में देर लग सकती है, जिसके अन्दर किसान समाज के लिए शक्तिभर काम करता है और अपनी जरूरत के लायक समाज से पा लेता है। तब तक तो किसान को अपने खेत पर ही मेहनत करके उससे बाजार मे जो मिल जाय, उसी पर निर्भर करना पड़ेगा। ऐसी सूरत में किसान की रक्षा और मदद करनेवाली फसल के बीमे जैसी कोई योजना होना जरूरी है। ये योजनाएँ गाँव की बहुकामी सहकारी सभा द्वारा बनायी और चलायी जायँगी और किसानों को सहूलियत रहेगी कि वे अपनी किश्ते उपज के रूप में दे सके।

ग्रामों की ऋण-समस्या

भारत की खेती की समस्या को सुधारने की इच्छा से बनायी गयी योजना के सामने सबसे महत्त्वपूर्ण और कठिन समस्याओं में से एक ग्रामीणो के ऋण की समस्या होगी—अर्थात्—पुराने ऋण को चुकाना और आगे के लिए ऋण की सुविधा करना। बहुत-से किसानों के सिर पर उनका अपना लिया या उनके पुरखो द्वारा लिया गया इतना ऋण है कि जिसको चुकाने की वे आशा भी नही कर सकते। पुश्तों से ये गरीब ऊँची

दर की सूद देते रहते है और फिर भी ऋण से मुक्त नही हो पाते। इन साहूकारों ने साहूकारे को एक खासी कला वना लिया हैं। वे किसानो को हजार तरह से लूट-लूटकर उन्हें ठेठ गुलामी की हालत में पहुँचा देते है। वहुत-से किसानो के सिर पर भय की यह तलवार निरन्तर लटकती हीरहती हं कि कही कर्ज की अदायगी मे अपनी आजीविका का एकमात्र साधन जमीन ही न छिन जाय। जव तक इस स्थिति को तुरन्त और पूरी तरह नही बदल दिया जाता, तव तक खेती के पुनर्जीवन और समानतायुक्त और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना का सवाल ही खड़ा नही हो सकता।

इसलिए गाँव-सभा को प्रत्येक किसान के कर्ज की जाँच करनी होगी और यह निर्णय करना होगा कि उसे यह कर्ज चुकाना चाहिए या नही और अगर चुकाना उचित हो, तो वह किस प्रकार चुकाया जा सकता हैं। वह जाँच करेगी कि कर्ज किस काम के लिए लिया गया या कितना लिया गया या व्याज की दर क्या लगायी गयी है। कितनी रकम दी जा चुकी हे। कर्जदार की शक्ति और कर्ज देनेवाले साहूकार की माली हालत कैसी है? इन सव वातों का विचार वह कर्ज चुकाने की वात सोचने से पहले करेगी। यह सव जाँच कर लेने के वाद अगर उसे यह उचित जान पड़े कि अव कर्ज वापस देने की जरूरत नही है, तो वह ऐसा निर्णय कर सकती है। अधिकाश कर्जो की रकमों में भारी कमी करनी होगी। मूलधन के वरावर या उससे अधिक व्याज कभी मंजूर ही न किया जाय। और अगर ग्राम-सभा देखे कि कहीं-कही साहूकार ने मूलधन के अलावा उचित से अधिक

व्याज वसूल कर लिया है, तो गॉव-सभा इस तरह 'कर्जदार को धोखा देकर वसूल की गयी रकम उसे वापस दिलायेगी।

जहॉ-जहॉ जमीन पर से व्यक्ति का स्वामित्व हट जाय और जमीन गॉव-सभा के कब्जे मे आ जाय, वहॉ किसानों के कर्ज की जिम्मेवारी ग्राम-सभा अपने ऊपर ले लेगी। वह साहूकारो से कहेगी कि वे अपने दावे छोड दे और कर्ज की रकम दान के रूप मे समाज को दे दे। परन्तु यदि इसे साहूकार स्वीकार न करे, तो गॉव-सभा कर्ज अदा करना स्वीकार कर ले। इन सूरतो मे वह पुनर्वास-भत्ता उचित से अधिक न दे। हॉ, अगर वह देखे कि जिसके कर्ज की जिम्मेदारी वह अपने सिर पर ले रही है, वह इसे चुका सकता है, तो यह रकम वह किसान से वसूल कर ले।

जहॉ जमीन पर समाज का स्वामित्व न भी हो गया हो, वहॉ भी गॉव-सभा को यह अधिकार होना चाहिए कि वह प्रत्येक किसान के कर्ज की जॉच करके यह निर्णय दे सके कि कर्ज कतई नही लौटाना चाहिए, कम किया जाना चाहिए या पूरा वापस दिया जाना चाहिए। आखिरी सूरत मे वह यह भी तय कर दे कि कर्ज की अदायगी किस प्रकार की जाय। कर्ज को न लौटाते या कम करने का विचार करते समय गॉव-सभा यह भी देख ले कि इससे साहूकार की आर्थिक स्थिति एकदम खराब तो नहीं हो जा रही है। सर्वोदय-समाज-व्यवस्था में प्रत्येक बाल्गि रोजी प्राप्त कर सकेगा। संक्रमण-काल मे भी, जब कि कर्ज कम करने या कतई नही लौटाये जाने का निर्णय करना पडे, गॉव-सभा ऐसे साहूकारों को अनाथ बनाकर न

छोड़ देगी, वल्कि उन्हें या तो कोई निर्वाह का साधन देगी या पुनर्वास-भत्ता देगी, अगर उसे यह प्रतीत होगा कि वे खुद अपने लिए कोई काम नहीं तलाश कर सकते।

इस प्रकार कर्जों को समाप्त करने या कम करने से यों किसानों का वोझ काफी हलका हो जायगा, फिर भी गाँवों के कर्ज की मुख्य समस्या तो अभी अछूती ही रह जाती है। अगर किसानों की जरूरत के समय उन्हें नये कर्ज मिलने का समुचित प्रवन्ध नही हो पाया, तो किसानों को या तो फिर कर्ज लेना होगा या फिर यह सुविधा नही हुई, तो खेती के काम-काज में हर्ज होगा। इसलिए खास समस्या तो यह है कि किसानों को जरूरत के लायक पूरा कर्ज मिल जाय, किन्तु वे शोपण और सूदखोरी के शिकार न हों। छोटे-छोटे किसानों को कर्ज दो कारणों से ही लेना पड़ता है। खेती की लागत, जैसे औजार, वैल, वीज आदि के लिए या फिर शादी, मृत्यु, जैसे खुशी और शोक के प्रसंगों पर होनेवाले सामाजिक कार्यों के लिए। इन रूढ़ियों के शिकार होकर किसान अपनी औकात से अधिक खर्च न करें, यह प्रयत्न सुधारकों को करना होगा; क्योंकि यह एक व्यापक बुराई है। चूंकि परिवारों के वीच आज जैसे सम्वन्ध होते है, वैसे ही अव गाँवों में किसानो के वीच भी होंगे। अत: गाँव-सभाओं को पारस्परिक सम्वन्धों के नये नमूने कायम करने होंगे और यत्न करना होगा कि वे रूढ़ हो जायँ। गाँवों की वहुधंधी सहकारी समितियों का काम होगा कि वे नकद और जरूरी चीजों के रूप में किसानों को ऋण देकर उनकी खेती के सुधार में सहायता कर दिया करें। जहाँ आवश्यक

हो, इन समितियों की यह सामर्थ्य होनी चाहिए कि वे गाँव-सभा द्वारा दो वर्ष की आवश्यकताओं की पूर्ति के उद्देश्य से सग्रहीत अन्न-भण्डार की जमानत पर स्टेट बैंक से या क्षेत्रीय अधिकारियों से ऋण ले सकें। जमीन को कोई रेहन नही रख सकेगा, क्योकि जमीन पर किसानो का स्वामित्व होगा ही नही।

खेती सम्बन्धी अनुसन्धान

इस अध्याय के प्रारम्भिक हिस्सों में बताया गया है कि योजना के अन्दर खेती की पद्धति मे बहुत भारी-भारी सुधार होगे और फलतः उस हिसाब से खेती की उपज भी बढ जायगी। यह भी बताया गया है कि जोतनेवालो की सख्या बढ जायगी। किन्तु यह सब प्रगति तब तक देश को लाभ नही पहुँचा सकेगी, जब तक गहरी खेती को सफल बनाने सम्बन्धी वैज्ञानिक जानकारी—उदाहरणार्थ, बदल-बदलकर फसले बोना, वैज्ञानिक पद्धति की खादों का और यन्त्रो का उपयोग, वगैरा समस्त जनता को देने के प्रयत्न में सब नही लग जायेंगे। और किसानो को सुधरे हुए बीज और औजार नही मिल जायेगे। यह तब तक सभव नही होगा, जब तक खेती सम्बन्धी अनुसन्धान-केन्द्रों का जाल सारे देश मे नही फैल जायगा और वे प्रत्येक गाँव के किसानों के निरन्तर संपर्क मे नही रहेंगे।

यों आज भी देश मे कुछ अनुसन्धान केन्द्र और प्रयोग-क्षेत्र तो है। परन्तु यह नही कहा जा सकता कि इन अनुसन्धानों और प्रयोगों के परिणामो का लाभ करोड़ों किसानों को मिलने लग गया है। यह तभी सम्भव होगा, जब अनुसन्धान-केन्द्रों की संख्या काफी बढ़ जायगी और अनुसन्धान के हेतु मे ही सुधार

हो जायगा अर्थात् देश के विभिन्न भागों में बसनेवाले छोटे-छोटे किसानों की समस्याओं को समझकर उनके हल ढूंढ़ने का यत्न किया जायगा। इसलिए खेती सम्बन्धी अनुसन्धान का मुख्य हेतु यह होगा कि छोटे-छोटे रकबोंवाले खेतों पर काम देने लायक सुधरे हुए औजार ढूँढ़ना, जमीन की उपजाऊ शक्ति की रक्षा और सुधार करना, भिन्न-भिन्न आबोहवावाले क्षेत्रों मे पनप सकें, ऐसी किस्म के तरह-तरह के बीज तैयार करना और इसी प्रकार कुदरती और वैज्ञानिक तरीकों से बनायी गयी खादों की खोज करके उनसे सम्बन्धित जानकारी जनता के लिए उपलब्ध कर देना। इन तमाम बातों में इन अनुसन्धान-केन्द्रों को चाहिए कि जापान जैसे देशों में इस बारे में जो सुधार हुए हैं, उनका अध्ययन करें और जहाँ सम्भव हो, उनको स्वीकार भी कर लें, क्योंकि वहाँ की आबादी घनी है और जमीन की कमी है। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका और संयुक्त राज्य रूस में किये गये खेती सम्बन्धी अनुसन्धान हमारे लिए इतने उपयोगी नही होंगे, क्योकि वहाँ जमीन बहुत अधिक है और जोतनेवालों की सख्या अपेक्षाकृत कम। हमारे देश की स्थिति इससे भिन्न है। इसलिए वहाँ के प्रयोग हमारे लिए इतने उपयोगी न होंगे। हमारे अनुसन्धान-क्षेत्रों को भारी संख्या में प्रयोग करने होंगे और यह देखना होगा कि दूसरे देशों ने जो ज्ञान और यन्त्र सम्बन्धी प्रगति की है, उससे हमारे देश को उसकी भिन्न परि-स्थिति और जरूरतो को देखते हुए किस तरह लाभ पहुँचाया जा सकता है।

हम नही कह सकते कि हमारे देश के अनुसन्धान-केन्द्र

कहाँ तक इन बातों को ध्यान में रखकर कार्य कर रहे हैं। इसके विपरीत हम देखते हैं कि यहाँ तो प्रायः इसी उद्देश्य से अनुसन्धान किया जा रहा है कि किस प्रकार यन्त्रों की मदद से खेती का विकास हो। और यह प्रयोग बड़े पैमाने पर विशाल खेतों पर बड़े कारखानों की मदद के लिए किये जा रहे है। बिनौले, गन्ने और पटसन की नयी-नयी किस्मों का विकास करने के लिए जो अनुसन्धान-कार्य हो रहा है, इसके वे प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

खेती के अनुसन्धान-केन्द्र "ऋषि-खेती" के क्षेत्र में भी अनुसन्धान कर सकते है। ऋषि-खेती में यन्त्र तो ठीक, पशुओं का भी उपयोग खेती के काम-काज मे नही किया जाता। सब काम मनुष्य खुद करता है और उसमे ऐसे ही औजारों से काम लेता है, जिनसे मनुष्य खुद काम ले सकता है। इस पद्धति में तरह-तरह के अनुसन्धान करके यह देखना चाहिए कि दूसरे प्रकार की खेती से जितनी उपज होती है, उतनी उपज इसमे सुधरे हुए औजार और नयी पद्धति से हो सकती है या नही। इस अनुसन्धान का एक उद्देश्य यह भी हो सकता है कि खाद के लिए भी बड़ी मशीनों की मदद बगैर लिये इस पद्धति से पूरी उपज हो सकती है या नही? अगर यह सिद्ध हो जाय कि ऋषि-खेती से भी पूरी पैदावार मिल सकती है, तो कुछ जमीन इसी प्रकार की खेती के लिए छोड़ी जा सकती है।

खेती-अनुसन्धान-शालाएँ और प्रयोग-क्षेत्र नयी आबादी की जमीन पर ही स्थापित किये जायँ। इन क्षेत्रों मे नये-से-नये यन्त्रो का और पद्धतियो का प्रयोग किया जाय और उनके गुण-विशेषों का परीक्षण किया जाय। ◆◆◆

: ३ :

पशु-पालन

कहने की जरूरत न होनी चाहिए कि पशु-पालन और खेती के बीच कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारतवर्ष में इसका और भी अधिक महत्त्व है, क्योंकि ८० प्रतिशत से भी ज्यादा आबादी यहाँ गाँवों में रहती है और खेती तथा खेती सम्बन्धी ग्रामोद्योगों से निर्वाह करती है। इन गाँवों मे पुन. चैतन्य डालने की महत्त्वाकाक्षा रखनेवाली हर योजना को चाहिए कि वह खेती, पशु-पालन और ग्रामोद्योगो में भी नयी जान डाले और इन तीनो को एक साथ अविभाज्य रूप में जोड़ दे। अगर तीनों का वैज्ञानिक रीति से और परस्पर को सहायक हों, इस प्रकार विकास किया जाय, तो इससे खेती की पैदावार बढ़ेगी, गाँवों की आशिक और पूरी, दोनों प्रकार की बेकारी दूर होगी, ग्रामीण जनता की खरीदने की शक्ति बढ़ेगी, उसकी रहन-सहन ऊँची होगी और वह आत्म-निर्भर बन जायगी।

हमारी आबादी का ७१·६ प्रतिशत खेती और खेती से सम्बन्धित पेशों से आजीविका पाता है। राष्ट्र को इनसे ४७५० करोड की आय होती है, जो कुल राष्ट्रीय आय का ४९·९ प्रतिशत है। परन्तु जो लोग खेती और उससे सम्बन्धित पेशों से अपनी आजीविका पाते हैं, उनकी औसत आय (सन् १९५२-५३ की कीमतों के आधार पर) ४८२ रु० है। देश में जितने भी पेशे है, उनमें यह सबसे कम आयवाला है। और राष्ट्र में

रोजगारी आदमी की जो औसत आय मानी गयी है, उससे भी यह कम है। यह नीचे लिखे अंकों से प्रकट होगा :

पेशों का नाम	आदमी की औसत वार्षिक आय
१. यातायात, रेलवे, बैंकें और बीमा	२२५०)
२. खाने और कारखाने	२२२५)
३. अन्य व्यापार और माल ढोने के साधन	१५१०)
४. शासन-यंत्र, अन्य धधे, कला, कारीगरी	११६१)
५. छोटे उद्योग	८५०)
६. खेती और उससे सम्बन्धित पेशे	४३२)
७. सारे भारत की जनता की औसत आय	७१०)

जब तक हम खेती की फी एकड़ पैदावार बढ़ाकर किसान को कोई सहायक उद्योग नही दे देंगे, तब तक हम किसान के जीवन-मान को ऊँचा नही उठा सकेंगे। पशु-पालन किसान के लिए इस तरह का एक अत्यन्त स्वाभाविक सहायक उद्योग हो सकता है। बैल उसकी खेती मे मदद करता है। गाय उसे दूध देती है, जो एक पोषक खूराक है और बेचने पर आय मे भी वृद्धि हो सकती है। इसलिए किसानो को समझाया जाना चाहिए कि वे खेती के साथ-साथ कुछ पशु—खास तौर पर गाये—भी रखे, क्योकि पालतू पशुओं मे गाय सबसे अधिक उपयोगी पशु है।

किसान के आर्थिक जीवन में गाय उसका मूक किन्तु अनिच्छुक साथी बन गयी है। प्रकृति की व्यवस्था मे भिन्न-भिन्न प्राणियो के बीच के सहयोग की वह मानो जीता-जागता प्रतीक

है। निम्नतर श्रेणी के जानवरो में यह सहयोग विचारपूर्वक नहीं होता। किन्तु सहज बुद्धि तो उन सबमे होती ही है। यही उस सहयोग का आधार होती है। परन्तु मनुष्य तो गाय का पालन खेती और गृह-जीवन में उसके महत्त्व को पूरी तरह समझकर ही करता है। इस तरह मनुष्य और शेष जीवसृष्टि के बीच के सहयोग का प्रतीक गाय बन गयी है। यह इन दोनों के बीच के सांस्कृतिक सम्बन्ध की भी प्रतीक है। इसीलिए हमारे देश में उसके प्रति इतना आदर और पूजा का भाव है।

समझने की जरूरत है कि हमारे देश का अपना एक समाजवाद है। उसमें गोवश को हमने अपने समाज मे ही स्थान दिया है, और गो-जाति का पूरा उपयोग लेकर उसको पूरा रक्षण देने की जिम्मेवारी हमने उठायी है। भारत के लिए यह एक बड़ी दीर्घ-दृष्टिवाली योजना है।

पशु-पालन मे गाय का स्थान अद्वितीय है। भारत की खेती जोतने की आवश्यकता और दूध की आवश्यकता, दोनों बाते एक ही गोवश से याने गाय और बैल से पूरी हो सकती है। लेकिन पाड़े मे यह शक्ति नही है कि वह भारत के हर हिस्से की खेती की आवश्यकता पूरी कर सके। भारत की जो स्थिति है, उस स्थिति में ट्रैक्टर भी उसकी पूर्ति नही कर सकता। अतः हमारे लिए बैल अनिवार्य है। दूध देने की शक्ति भी भैस के मुकाबले गाय मे अधिक है, भले ही देखभाल के अभाव में आज की गाय दूध कम देती हो। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी मानव के लिए गो-दुग्ध ही अधिक अनुकूल और लाभ-दायी है। सर्वोदय-समाज की अर्थ-रचना मे हम विकेंद्रित अर्थ-

व्यवस्था द्वारा ग्राम-स्वावलबन चाहते है। विकेंद्रित शक्ति भी आज हमारे पास बैल-शक्ति ही है। हमारी सारी रचना ही गो-केंद्रित अर्थ-व्यवस्था कही जा सकती है। इन सब दृष्टियों से भारत का हित इसीमें है कि मुख्य शक्ति गो-पालन पर ही लगायी जाय।

गाय तभी जीवित रह सकती है, जब उसे आर्थिक दृष्टि से स्वावलबी बनाया जा सके। गाय का संवर्धन इस प्रकार करना होगा, जिससे उसके बैल खेती जोतने की अच्छी शक्ति रखते हों और जोतशक्ति को घटाये बिना दूध का उत्पादन भी उसकी बछडियो मे अधिक-से-अधिक बढे। दूसरी ओर यह भी करना होगा कि गोरस का मूल्य भी पूरा मले और लोगों मे गोरस के प्रति प्रेम बढे। उसकी खपत बढाने के लिए उसके गुणों का प्रचार करना होगा और गोव्रतियों को उत्तेजन देना होगा। साथ-साथ यह भी करना होगा कि गोरस का भ्रम पैदा करनेवाले कृत्रिम दूध, मक्खन, घी आदि जमाये तेल के पदार्थो पर गोरस का रूप देने पर प्रतिबन्ध लगाया जाय। उसी तरह बाहर से डिब्बे आदि में आनेवाले घी, दूध के आयात पर भी रोक लगानी होगी।

पश्चिम और पूर्व के गोपालन के भेद को स्पष्ट समझ लेना आवश्यक है। पश्चिम मे बैलों का उपयोग मास के लिए किया जाता है। हमारे यहाँ बैल का उपयोग खेती जोतने के लिए होता है। पश्चिम मे बेकार और कमजोर, रोगी या अनुत्पादक पशुओ का प्रश्न कत्ल एवं भक्षण द्वारा हल किया जाता है। लेकिन हमारे यहाँ कत्ल न करने का हमारा

निश्चय होने के कारण गोसदनो आदि द्वारा उनके पालन का और सयत प्रजनन द्वारा--कन्ट्रोल ब्रिडिंग--उनकी वृद्धि रोकने का तरीका निकालना होता है।

हमारे यहाँ आज गाय की जो दशा गिरी है, उसका सबसे वड़ा कारण चारे की कमी है। पुरानी पद्धतियों के वड़े-वड़े गोचर आज की स्थिति में संभव नही, हालाँकि हर गाँव मे थोडी-थोड़ी गोचर भूमि कम-से-कम १० प्रतिशत अवश्य छोड़नी होगी। चरागाहों और जगलो की घास की जातियाँ सुधारनी होंगी। 'मिक्स्ड फार्मिंग' बढाना होगा। इन फसलो के साथ चारे की ऐसी फसलों को उत्तेजन देना, वृक्षों की पत्तियों एव बेकार जानेवाली चीजो का उपयोग करना, 'रोटेशन' पद्धति दाखिल करना, कुट्टी करना, 'सायलेज' बनाना आदि तरीकों को काम में लेकर अन्न-नियोजन की तरह ही चारे का भी नियोजन करना होगा।

प्रजनन का विचार करते समय हमें इन बातों का स्मरण रखना चाहिए कि गाय से हमारी पहली आवश्यकता खेती जोतने के लिए बैल पैदा करने की है। ऐसा प्रयत्न करना होगा कि किसी भी प्रकार बैलों की जोतशक्ति कम न हो, उल्टे जितनी बढ़ सके, बढ़े। बैलों के साथ-साथ हमारी दूसरी आवश्यकता दूध की है। आज भारत में हर आदमी को प्रायः ४ औंस--१० तोला--दूध मिलता है, जब कि उसे कम-से-कम २० औंस--५० तोला--मिलना चाहिए। याने आज से पाँच-गुना दूध बढाना चाहिए। इस स्थिति को लाने के लिए यह आवश्यक है कि गाँव की पूरी जमीन गाँव-समाज के अधीन

हो और गॉव का पूरा जीवन विकेन्द्रित ग्रामोद्योगों के आधार पर हो एव 'मिक्स्ड फार्मिंग' की पद्धति पर उसका नियोजन किया जाय। प्रजनन मे 'सिलेक्टिव ब्रिडिंग' को प्रमुख स्थान रहे। जहाँ अत्यन्त आवश्यकता हो, वही दूध-वृद्धि की दृष्टि से 'क्रास ब्रिडिंग' किया जाय। फिर भी यह खयाल रखना होगा कि जोत शक्ति कम न हो। जिस स्थान में जो बैल वहाँ की खेती के लिए सर्वोत्तम हो, वहाँ उसी स्थानीय गो-वंश को बढावा देने का प्रयत्न किया जाय। अपात्र साडों को बधिया किया जाय एवं ग्राम-नस्ल-सुधार-योजनाएँ अमल मे लायी जायँ।

गाँव-सभाओं को यह प्रबन्ध करना होगा कि कमजोर और सूखे जानवरों को लोग खुले न छोडें अथवा बूचड़खानों मे न भेजा करें। सूखी गायों का वध जंगलीपन है। इसे रोकना चाहिए। अनुत्पादक पशुओं के दो विभाग कर सकते है। बूढे, कमजोर, अपग पशुओं का एक विभाग और मजबूत लेकिन कम दूध देनेवाली गायो का दूसरा विभाग। बूढे एव कमजोर पशुओ का पालन लोग स्वय कर सके, ऐसा प्रयत्न किया जाय। जहाँ वैसा संभव न हो, वहाँ गोसदन, पिंजरापोल एवं गोरक्षण-संस्थाओ द्वारा किया जाय। उनका खर्च गोशालाओ के लाग-बाग, बुढ़ापे के बीमे आदि से चलाया जाय। कम दूध देनेवाली, लेकिन मजबूत गायों से खेती जोतने आदि का उनकी शक्ति के अनुसार हलका काम लिया जाय। इन पशुओं के मरने पर उनकी हड्डी, मांस, चमड़े आदि का पूरा-पूरा उपयोग लिया जाय। उसके लिए चर्मालयों की स्थापना की जाय।

वड़े-बड़े शहरों मे आज बढ़िया से-बढ़िया गायें, भैंसे जाती है और दूध सूखने पर वहाँ पालन की सुविधा न होने के कारण वे कसाई के हाथों बिक जाती है। उनकी प्रजनन शक्ति कम हो जाती है, बछडे-वछिया नष्ट हो जाती है। इसलिए यह आवश्यक है कि उनको जल्दी-से-जल्दी वहाँ से हटाकर जहाँ भूमि की सुविधा हो, ऐसे देहातों मे ले जाया जाय। जहाँ उनका पालन आर्थिक दृष्टि से संभव हो सके, वही उन्हे रखा जाय और वहाँ से शहरो मे दूध पहुँचाया जाय। खेती और गाय का संबंध सिक्के के दो बाजू की तरह अभिन्न है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। गाय से खेती और खेती से गाय जिदा रहती है। जो गोवर शहरों में गंदगी फैलाकर रोग पैदा करता है, वही देहातों की भूमि मे सोनखाद वनकर फसल वढाता है। अतः वड़े शहरो से दुधारू पशुओं को तुरन्त हटाना होगा।

आज की कीमती एलोपैथिक चिकित्सा भारत के गरीव देहातों के लिए बहुत महँगी है और परावलंवी भी। देहातों के लिए अनुकूल और वही की स्थानीय वस्तुओं से वनी औष-धियों की खोज होनी चाहिए। आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति को आगे वढाना चाहिए। एलोपैथी में जो दवाइयाँ किसान के वूते की हों और उपयोगी हों, उनका लाभ उठाया जा सकता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से गाँवो में सवसे अधिक आवश्यकता पशुओं के लिए पीने के स्वच्छ जल की है। गंदे पानी द्वारा गायों के शरीर में रोग प्रवेश करते है।

गो-पालन-शिक्षण को वुनियादी शिक्षण मानकर शिक्षण-

संस्थाओं मे गो-पालन की शिक्षा दी जानी चाहिए। गो-पालन के विशेष शिक्षण की स्वतंत्र व्यवस्था हो, जिस शिक्षण का मकसद यह हो कि किसान अपने घर मे या गाँव में वैयक्तिक या सामुदायिक गो-पालन प्रत्यक्ष रूप से कर सकें। ◆◆◆

: ४ :

उद्योग

सर्वोदय-योजना के मूलभूत सिद्धान्त और इसके लक्ष्य पिछले अध्यायो में दिये जा चुके हैं। उनके देखने पर किसीके मन में अब इस विषय मे कोई सन्देह नही रह जाना चाहिए कि हमे अपने समाज की मौजूदा अर्थ-व्यवस्था को जड़ से बदल देना है और एक नयी व्यवस्था कायम करनी है, जो विकेन्द्रीकरण, स्वावलम्बन और हर मनुष्य के लिए पूरा काम, इन सिद्धान्तों पर आधारित होगी। विकेन्द्रीकरण का अर्थ योजना-शून्यता अथवा पारस्परिक सहयोग या सहकारिता का अभाव नही है। विकेन्द्रीकरण का अर्थ यह भी नही कि जहाँ-तहाँ स्वच्छन्दता-पूर्वक उद्योग खडे होते रहेगे और वे अपने प्रदेश की जरूरतों और साधनो का अथवा उत्पादन के दूसरे क्षेत्रों मे चल रही प्रवृत्तियो का कोई खयाल नही करेगे। वास्तव मे योजना के अन्दर इन सब बातों का पूरा विचार होगा। वहाँ सम्बन्धित प्रदेश की जरूरतों को देखकर ही उत्पादन किया जायगा।

यही नही, बल्कि आसपास के प्रदेशों की जरूरतों और उत्पादन-शक्ति का परस्पर मेल भी बैठाया जायगा और ऐसे औजारों से काम लिया जायगा कि जिनकी मदद से अधिक-से-अधिक आदमियों को काम दिया जा सके और साथ ही उत्पादन भी पूरा-पूरा हो। उत्पादन के साधन किन्ही खानगी व्यक्तियो के हाथ में न पहुँच जायँ और समाज शोषण का शिकार न बन जाय, इस सबकी पूरी सावधानी बरती जायगी। ऐसा विकेन्द्रीकरण केवल भौगोलिक दृष्टि से उद्योग-केन्द्रों को दूर-दूर स्थापित कर देनेभर से सिद्ध नही होगा। इसी प्रकार वह मौजूदा ग्रामोद्योगों की नीव पर भी नही खड़ा किया जा सकता। क्योंकि ये तो आज कारखानों की प्रतियोगिता की मार के कारण और वैज्ञानिक सहायता के अभाव मे मौत के दरवाजे पर पड़े हैं। विकेन्द्रीकरण का अर्थ यह भी नही कि घड़ी के काँटों को उल्टा घुमाकर समाज को असभ्य जंगली अवस्था मे केवल छोड़ दिया जाय। योजना यान्त्रिक प्रगति से अपने-आपको वंचित भी नहीं रखना चाहती। उल्टे उसकी तो इच्छा यह है कि वह विज्ञान और यन्त्र-शास्त्र का पूरा-पूरा लाभ उठायें। और बेकारी तथा शोषण को मिटाकर अधिक-से-अधिक लोगों को काम देकर उत्पादन को खूब बढा सके। मतलब यह कि यह योजना उद्योगीकरण की सारी कल्पना को बदल देना चाहती है और यन्त्रों के उपयोग के मूलहेतु को ही पलट देने पर तुली हुई है।

उत्पादन की यह विकेन्द्रित व्यवस्था केन्द्रित व्यवस्था की अपेक्षा कहीं अधिक लाभदायक है। सबसे पहली बात उत्पादन के साधन मुट्ठीभर आदमियों के अधिकार में न होंगे, जिससे

समाज एकाधिकार, पूँजीवाद और सर्वसत्तावाद से बच जायगा। दूसरे, काम करने के औजार कारीगरों के अपने अधिकार में होंगे। इससे मालिक-मजदूर का भेद मिट जायगा। कोई किसीको काम देता है, यह कल्पना ही मिट जायगी। जो काम नही करेगा, उसे पारिश्रमिक ही नहीं मिलेगा। परिश्रम करने-वाले को निर्माण का आनन्द मिलेगा और वह अपनी आजादी नही खोयेगा। इससे बेकारी भी मिटेगी और उत्पादन भी बढेगा। इसके अलावा चूँकि प्रत्येक प्रदेश अपनी जरूरत की चीजे यथासंभव खुद पैदा कर लिया करेगा, इसलिए उत्पादन और कच्चे माल को कारखानो तक पहुँचाने तथा बने-बनाये माल को ग्राहकों के पास पहुँचाने की सारी झझट और व्यवस्था-खर्च बच जायगा। और केन्द्रित उत्पादन पर कारखानो पर जो बेशुमार खर्च करना पड़ता है, उसमे काफी बचत हो जायगी, क्योंकि केन्द्रित उद्योगों की अपेक्षा विकेन्द्रित उद्योगों में निश्चय ही कम लागत लगेगी।

इस पद्धति से एक और भी लाभ होगा। पूंजी और उत्पादन तथा पूंजी और रोजगारी के बीच का अनुपात विकेन्द्रित पद्धति में बडा लाभदायक होगा। लोगो के दिमाग मे एक बड़ी जबरदस्त गलत धारणा घर किये बेठी है कि यन्त्रोद्योगों से बेकारी मिटती है। नीचे कुछ अंक दिये जा रहे है। सन् १९४७ से १९५३ तक कारखानो में कितने आदमी काम करते थे, यह इसमें स्पष्ट होगा। इन्हें पढ़ने पर यह स्पष्ट होगा कि केन्द्रित उद्योगों के हिमायती न तो जमीन का बोझ हल्का करने में सफल हुए है और न बेकारी को जरा भी मिटाने में।

	१९४७	१९५०	१९५३
वर्तमान रजिस्टर्ड कारखाने	५,६३२	७,०९९	७,१०४
लागत पूंजी (लाखों में)	१,७७,१७	२,५८,१५	३,२४,९२
काम चलाने की पूंजी ,,	२,२६,२७	३,५६,३८	४,०३,७४
काम में लगायी कुल पूंजी ,,	४,०३,४४	६,१४,५३	७,२८,६६
काम करनेवाले मजदूर (हजारों में)	१४,८७	१४,६८	१४,७१
काम करनेवाले अन्य लोग ,,	१,४६	१,६४	१,५७
कुल आदमी जो लगे है ,,	१६,३३	१६,३२	१६,२८

यही काम अगर विकेन्द्रित पद्धति से किया जाय, तो कितने अधिक आदमियों को विविध प्रकार का काम मिल सकता है, सो देखिये। हाँ, इनको सुधरे हुए औजार या छोटे-छोटे यन्त्र जरूर दिये जायँगे :

अनुमान—बेकारी मिटाने का

उद्योग	अनुमानित व्यय लाखो मे	कितने आदमी काम करेंगे	कितने समय का काम
१. सूत हाथ करघा	८,०००	२५ लाख	पूरा समय
२. रेशम ,,	५००	२·५ ,,	,,
३ ऊन ,,	३००	१·० ,,	,,
४. ऊन की कताई-बुनाई (खादी)	२२०	३०,०००	आंशिक
५. सूत की ,, ,, (खादी)	२,३००	२ से ३ लाख	,,

६. हाथ-कुटे चावल	८२६	१० लाख	मौसम में
७. तेलघानी	१,३००	१,५०,००० तेली (पुरानी घानी)	पूरा समय
		५०,००० तेली (नयी घानी)	,,
८. चमडा उद्योग (गाँवों का)	६१५		पूरा समय अधिक आय
९ गुड और खाण्डसारी	८००	३८,०००	पूरा समय
१०. दियासलाई	१००	+	,,
११. अन्य ग्रामोद्योग	१,१००	१०,०००	आंशिक
		१,००,०००	पूरा समय
१२. दस्तकारियाँ	१,१००	१,४०,०००	,,
१३. छोटे उद्योग	६,५००	३६,०००	,,
१४. रेशम की उत्पत्ति	६००	१,६०,०००	,,
१५. नारियल की रस्सी	२००	६०,०००	,,
१६. जनरल योजनाएँ, उनका तंत्र, सशोधन आदि	१,५००	२५,०००	,,
		१५,०००	,,
	२५,९६१		

+ इस उद्योग पर किये जानेवाले खर्च का उपयोग दियासलाई के सुधार मे और उसकी कीमत घटाने मे किया जायगा। इससे बहुत अधिक लोगो को काम नही मिलेगा।

खादी और ग्रामोद्योगों से लागत और रोजगारी की वृद्धि

अ उद्योग	कुल लागत (लाखों में)	रोजगारी
१. खादी		
(क) कपास	१८,९८७·०९	५१·३ लाख
(ख) ऊन	४५२·८५	३२,२५०
२. हाथकुटे चावल	४,२४४·४१	१३·१ ,,
३. तेलघानी	१,८३७·९५	२·० ,,
४. गुड़ और खाण्डसारी	१,९४३·९७	२·४२ ,,
५. चमड़ा उद्योग (ग्रामीण)	५३९·७५	३०,०००
६. गृहोद्योगी—दियासलाई	१६५·२५	६९,०००
७. साबुन	९४५·४७	२·२८ ,,
८. हाथ कागज	१३३·६२	१२,०००
अ का योग	२९,२५०·३६	७२·५३ ,,
आ		
९ ताड़-गुड़	१,५२९·८६	२·६ ,,
१०. मधुमक्खी-पालन	९२·०२	१९,३७५
११. कुंभार-काम	१४·५१	८,०००
आ का योग	१६३६·३९	२·८७ ,,
इ		
सघन क्षेत्र में संशोधन और प्रशिक्षण	८१८·५१	—
कुल योग	३१,७०५·२६	७५·४ ,,

ऊपर दी गयी तालिकाओ से यह स्पष्ट हो जायगा कि नियोजित उत्पादन कार्यक्रम के माध्यम से लोगों को अधिक-

से-अधिक काम देने का उपाय निकल आ सकता है। यदि उपभोग्य सामग्री के उत्पादन की यान्त्रिक और केन्द्रीकृत एवं विकेन्द्रित, दोनों प्रणालियों को साथ-साथ चालू रखने के बजाय सभी प्रकार की उपभोग्य सामग्री का उत्पादन विकेन्द्रित उद्योग-पद्धति पर किया जाय, तो लोगों के लिए पूर्ण और लाभप्रद धन्धे की सुविधाएँ बहुत अधिक बढ़ जायँगी। यहाँ तक कि शहरो में भी रोजगार की सुविधा पर्याप्त रूप से बढ सकती है, यदि 'होजियरी' तथा खेल-कूद आदि के सामान बनाने का काम विकेन्द्रित पद्धति से किया जाय।

इससे स्पष्ट हो जाना चाहिए कि सर्वोदय-योजना का अभीष्ट विकेन्द्रीकरण तभी सिद्ध होगा, जब वर्तमान उद्योग-प्रणाली और यन्त्र-शास्त्र का एक दृढ़ निश्चय के साथ कायापलट किया जायगा।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि सर्वोदय मे मालिक-मजदूर जैसे वर्ग नही होगे। मालिक ही मजदूर होगा और मजदूर ही मालिक भी होगा, क्योकि औजारों पर काम करनेवालो का स्वामित्व होगा और अपने परिश्रम के फल का उपभोग भी वे खुद करेगे। समाज की जरूरतों को देखकर और न्यायपूर्ण बँटवारे के आधार पर उत्पादन होगा। आज की उद्योग-प्रणाली मे उत्पादन बड़े पैमाने पर और केन्द्रित है, और वह या तो मुट्ठीभर कारखानेदारो के या सर्वसत्ताधीश राज्य के अधीन है। समाज और प्रादेशिक अधिकारी इसके स्थान पर नयी व्यवस्था कायम करेगे, जिसका आधार होगा, सहयोग और जिसमें मालिक-मजदूर जैसे वर्ग न होगे। सर्वोदय-अर्थ-व्यवस्था के तीन अंग होगे :

(१) स्वतंत्र रूप से काम करनेवाले कारीगर, जिनके पास अपने खुद के औजार होंगे।

(२) सहकारी क्षेत्र—इसमें भी कारीगरों के पास उत्पादन के अधिकांश साधन तो उनके अपने ही होंगे, परन्तु जिन साधनो को वे व्यक्तिगत रूप से खरीद न सकेंगे, उसमे सहयोग कर लेगें। समाज इनके लिए ऐसे साधन मुहैया कर देगा और उन्हे कारीगरो की सहकारी संस्थाओ के अधिकार में दे देगा। इन पर स्वामित्व तो समाज का ही होगा। परन्तु सहकारी समितियाँ इनके रोजमर्रा संचालन के लिए जिम्मेवार होगी।

(३) सामाजिक क्षेत्र—इसके अन्दर समाज या शासन पूर्णरूपेण उद्योग का संचालन करेंगे—कच्चा माल उपलब्ध करने से लेकर तैयार माल की बिक्री वगैरा की व्यवस्था तक सब। यह आवश्यक नही है कि इन उद्योगों की व्यवस्था और संचालन प्रशासनाधिकारी स्वयं करे। जहाॅ तक सम्भव हो, उनकी व्यवस्था और शासन की जिम्मेदारी सामाजिक स्वामित्व के अन्य साधनों,जैसे नगरपालिकाओं या अन्य सार्वजनिक संस्थाओं पर होनी चाहिए।

स्वतंत्र क्षेत्र समाज की जरूरत की चीजें पैदा करेगा। इसके अन्दर वे तमाम उद्योग आ जायँगे, जिनमें कारीगर अपने प्रयत्न से कच्चा माल प्राप्त कर अपने परिश्रम से तैयार माल बना सकेंगे। इसके अन्दर काम में आनेवाले औजार उनके अपने होंगे और जहाँ सारा काम अच्छी तरह और किफायत से वे कर सकेंगे।

जिन उद्योगों मे भारी-भरकम यन्त्रों की जरूरत न होगी,

ऐसे मझले उद्योग दूसरी श्रेणी में आयेंगे, जिनका संचालन विकेन्द्रित पद्धति द्वारा किफायत से हो सकता है। इसमें ऐसे औजारों या यन्त्रों से काम लिया जायगा, जो उस प्रदेश में ही बनाये जा सकेंगे और जिन पर व्यक्तियो का अपना-अपना या सम्मिलित स्वामित्व होगा। उत्पादन की सारी क्रियाओं का संगठन-संचालन सहकारी समितियों द्वारा होगा। हाँ, जो औजार व्यक्ति रख सकेंगे, वे उनके अपने ही होंगे। स्थानीय कच्चे माल से जहाँ विविध क्रियाओं द्वारा तैयार माल बनाया जा सकता है, ऐसे तमाम उद्योगों का संगठन-संचालन सहकारी समितियो का क्षेत्र करेगा। भारी केन्द्रित उत्पादनवाले कार-खानों मे बने तथा क्षेत्र के स्वतत्र कारीगरो द्वारा तैयार किये गये पुर्जो को जोड़कर पूरे यन्त्र खड़े करने का काम भी इस श्रेणी के उद्योगों मे होगा।

सामाजिक क्षेत्र मे भारी उद्योग होगे और ऐसे भी उद्योग होंगे, जिनका संगठन आंतरप्रादेशिक सहयोग के बगैर नही हो सकता और जो ऐसे यन्त्रों की मदद के बगैर नही चलाये जा सकते, जिनमें केन्द्रीकरण की जरूरत होती है। इस श्रेणी में लोहा और इस्पात के बड़े-बड़े कारखाने, जहाजरानी, यान्त्रिक यातायात, धातुओं और यन्त्र बनाने सम्बन्धी कारखाने और सक्रमण-काल के लिए आवश्यक सुरक्षा-सामग्री। परन्तु इस क्षेत्र का मुख्य उद्देश्य पहली और दूसरी श्रेणी के कारीगरो और यन्त्रों की जरूरतो की पूर्ति करना तथा ऐसे काम करना भी होगा, जो इन पहली दो श्रेणी के उद्योगों की शक्ति के बाहर हों। इस प्रकार इस श्रेणी के उद्योग सस्ते, अच्छी तरह काम देनेवाले और

निश्चित आकार-प्रकार और मजबूतीवाले पुर्जे बनाकर देंगे। और पहली दो श्रेणी के उद्योगों की मदद करेंगे। ये यान्त्रिक यातायात और सार्वजनिक सेवा के साधन बनायेंगे और अत में ऐसी वस्तुएँ बनायेंगे, जिनको पहली दो श्रेणी के उद्योग नही बना सकते, किन्तु जिन्हे बनाकर देश के बाहर भेजना तय हो।

स्वतत्र कारीगरों और सहकारी समितियों को आसान शर्तो पर आवश्यक मात्रा में कर्ज दिलाना, उनके लिए कच्चा माल मुहैया कर देना, हर प्रकार की शास्त्रीय जानकारी उपलब्ध कर देना और तैयार माल बन जाने पर उसकी बिक्री का उचित प्रबन्ध कर देना वगैरा को शासन और ग्राम-सभा अपना कर्तव्य मानेगे।

उद्योगसम्बन्धी नीति का एक मुख्य कर्तव्य यह भी होगा कि देश की खनिज सम्पत्ति का पूरा-पूरा उपयोग किस प्रकार किया जाता है। किन्तु साथ ही इसमें यह ध्यान भी रखा जायगा कि अति लोभ मे आकर इस सम्पत्ति का इतना नाश न हो जाय कि जिससे उसकी पूर्ति न हो सके और समाज के व्यापक हितों को हानि पहुँच जाय। देश की इस खनिज संपत्ति का विकास और उपयोग करने की जिम्मेवारी समस्त राष्ट्र की होगी। अतः उद्योग-नीति के संचालन में इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा जायगा कि उद्योग-क्षेत्र की जरुरतों को देखकर ही खनिज द्रव्यों का विकास किया जाय।

संक्रमण-अवस्था

अब सवाल यह खड़ा होता है कि इस संक्रमण-काल में

उद्योग-प्रणाली को किस प्रकार चलाया जाय। सबसे पहले ऊपर बतायी तीनों श्रेणियों के उद्योगो के क्षेत्र मुकर्रर कर देना होगा। इसके साथ ही प्रत्येक श्रेणी कौन-कौन-सी चीजे पैदा करेगी, उत्पादन की पद्धति क्या होगी और उसकी तादाद क्या होगी, यह भी स्पष्ट रूप से निश्चित कर देना होगा। इसके बाद प्रत्येक श्रेणी को उसके लिए निश्चित लक्ष्य तक पहुँचने में मदद करनी होगी और इसमे यह सावधानी रखनी होगी कि एक क्षेत्र दूसरे क्षेत्र पर आक्रमण न करने पाये।

आज कितने ही बड़े और केन्द्रित प्रणाली से चलनेवाले कारखाने हे और वे ऐसी चीजे पैदा कर रहे है, जिन्हे हमने स्वतत्र कारीगरो और सहकारी समितियो के द्वारा उत्पादन करने का सोचा है। तो हम इन कारखानेवालों को समझायेगे कि वे अपने-आपको विकेन्द्रित कर ले और हमारी दूसरी श्रेणी में बैठ सके, इस प्रकार अपना संगठन बना ले।

जमीन पर से व्यक्तिगत स्वामित्व हटाने की हलचल जैसे-जैसे जोर पकड़ेगी और लोग बडी संख्या में जमीनों पर से अपना स्वामित्व छोड़ने लगेगे, वैसे-वैसे इसका असर उद्योग-क्षेत्र पर भी जरूर पड़ेगा और कारखानेदार भी जमींदारों का अनुकरण करने लगेगे तथा कारखानों पर से अपना स्वामित्व छोड़ने लगेगे। फिर निजी सपत्ति की प्रथा न्याय पर नही, अन्याय के आधार पर खडी है, इसका भान जब मजदूरों को बहुत बड़ी संख्या में हो जायगा, और जब वे निजी सम्पत्ति पर से अपना स्वामित्व स्वय हटा लेगे, तब उनके अन्दर एक ऐसी शक्ति जाग जायगी, जो ऐसे वातावरण की सृष्टि करने मे समर्थ होगी, जिसमे

उद्योगपति स्वयं उत्पादन के साधनों पर से अपना स्वामित्व छोड़ने को मजबूर हो जायँगे।

इतने पर भी कारखानों के जो मालिक अपना स्वामित्व छोड़ने से इनकार करते रहेंगे, समाज उनके कारखानों को अपने अधिकार मे ले लेगा और उन्हें जमीन के मालिको की भाँति उसके बदले में पुनर्वास-भत्ता दे देगा। यह भत्ता किस रूप में होगा, उसकी तादाद क्या होगी और हर व्यक्ति को कितना दिया जायगा, इस बारे में खेतीवाले अध्याय में कुछ विचार प्रकट किये गये हैं। कारखानों का मुआवजा देते समय भी वही विचार ध्यान में रखे जायँगे।

इस बीच नये कारखाने खोलने और अन्य श्रेणी के उद्योगो के लिए जिनका उत्पादन सुरक्षित कर दिया है, उन वस्तुओ के निर्माण मे लगे हुए केन्द्रित कारखानों मे यन्त्रो के घिसे हुए पुर्जो को वदलने और अधिक यन्त्र वढ़ाने के काम को रोक दिया जायगा और स्वतत्र कारीगरोवाली तथा सहकारी समितियोवाली श्रेणियो की स्थापना और विकास को प्रोत्साहन दिया जायगा। किन्तु यह ध्यान रखा जायगा कि आर्थिक दृष्टि से वे समाज के लिए नुकसानदेह न हों। इस हेतु से तीनों श्रेणियो के लिए उनके क्षेत्र निश्चित कर दिये जायँगे। इसके मानी यह नहीं कि स्वतत्र कारीगरो ओर सहकारी समितियों के लिए उत्पादन की जो वस्तुएँ निश्चित कर दी जायँगी, उनका उत्पादन कारखाने और मिलें एकदम वन्द कर देंगी। ऐसा करने से तो उद्योग-प्रणाली एकदम ठप हो जायगी, यदि उसके साथ-साथ पहले इन श्रेणियों की उत्पादन-शक्ति वढा नहीं दी जायगी।

इसलिए बीच के संक्रमण-काल में केन्द्रित प्रणाली के उद्योगों और स्वतंत्र कारीगरों और ग्रामोद्योगों के बीच और इस काल में इनकी सख्या काफी बढ़ा लेनी होगी। उत्पादन का एक सम्मिलित और समन्वित कार्यक्रम बना लेना जरूरी होगा।

इस समन्वित कार्य मे समाज के लिए किसी भी वस्तु को आवश्यक मात्रा में बनाने मे सभी श्रेणी के उद्योग सहयोग करेंगे। किन्तु इसमें यह ध्यान जरूर रखा जायगा कि इन सब वस्तुओ की कीमत मे समानता रहे। यह अनेक प्रकार से किया जा सकता है। अगर हम यह देखे कि बड़े कारखानों या मिलों का माल विकेन्द्रित पद्धति से बनाये माल के मुकाबले मे सस्ता पडता है, तो हम बड़े कारखानों के माल पर कर लगा सकते है और अगर यह कर लगाने पर और उत्पादन के क्षेत्र सुरक्षित कर देने पर भी अगर स्वतत्र कारीगर और सहकारी उद्योग-समितियाँ अपने पैरो पर खडी न हो सके, तो राज्य इन सहकारी समितियों से कहेगा कि अपने माल को वे जहाँ भी बेच सके, बेचने का खुद प्रबन्ध करे और इसमे उनको अगर अपना माल कारखानो के भाव मे बेचने पर घाटा होगा, तो उसकी पूर्ति खुद राज्य कर दिया करेगा।

यह सच है कि इसका मतलब तो स्वतंत्र कारीगरों और सहकारी उद्योग-समितियोंवाली श्रेणी को प्रत्यक्ष मदद करने जैसा होगा। परन्तु इसमे कुसूर की क्या बात है, जब कि हमारी योजना डंके की चोट कहती है कि हम इन श्रेणियों को आर्थिक दृष्टि से मजबूत नींव पर खड़ा कर देना चाहते है। फिर अगर नीचे के अंकों को आप ध्यान से पढ़ेगे, तो देखेगे कि शासन की

नीति बड़े कारखानों के साथ रिआयत करने और उन्हे मदद पहुँचाने की तथा छोटे उद्योगों को जान-बूझकर नष्ट करने या उनकी उपेक्षा करने की रही है। तब, अगर अब समाज अपनी उद्योग-नीति को आमूल बदलना चाहता है, तो वह भी विकेन्द्रित उद्योगों को इसी प्रकार मजबूत नीव पर खड़ा कर सकता है और इसमें किसीको शिकायत न होनी चाहिए।

अ. महायुद्ध के पहले जिन उद्योगो को संरक्षण दिया गया :

उद्योग	सरक्षण का वर्ष	स० के पहले उत्पादन		सरक्षण के बाद १९५४	टिप्पणी
१. कपास का सूत और वस्त्रोद्योग	१९२७ १९४७	८० ७ २,२५ ९	करोड पौंड „ गज	१५६ ४ ५०० ०	
२. लोहा और इस्पात का उद्योग	१९२४ १९२७	१ ३१	लक्ष टन	१५ ३२	
३. कागज	१९२५ १९४७	·२७	लक्ष टन	·९०	जन० से अक्तू०'५४
४. चीनी	१९३१ १९५०	१ ५८	„	८·३६	„
५. दियासलाई	१९२८	२ १४	लक्ष पेटियाँ	४ ९०	

(एक पेटी मे ५० ग्रूस डिबिया)

आ. इ. महायुद्ध के बाद जिन उद्योगों को संरक्षण दिया गया :

उद्योग	सरक्षण का वर्ष	स० के पहले उत्पादन		सरक्षण के बाद
(क) धातु सम्बन्धी उद्योग				
एल्यूमिनियम उद्योग	१५-५-'४८	१,०७०	टन	४,८८६

फेरो सिलिकन उद्योग	१०-५-'४८ ३१-१२-'५३	१,१६६ टन	३,८११	१९५३ में
(ख) रासायनिक आदि				
सोडे की राख का उद्योग	२२-२-'५०	१७,९१८ टन	४८,२९३	
स्टार्च का उद्योग	१२-४-'५०	१,३५० ,,	१९,५६२	१९५३ मे
(ग) इजीनियरिंग के उद्योग				
बाइसिकल उद्योग	२२-३-'४७	४२,९८४ सख्या	३,४८,६६६	
बिजली की मोटरो का उद्योग	१२-४-'४८	. ८,९१३ ,,	३१,२८८	
हरीकेन लालटेनो का उद्योग	२५-१-'४७ ३१-१२-'५४	४ ७० लक्ष	४६ ०४	
सीने की मशीनो का उद्योग	२२-३-'४७ ३१-१२-'५४	६,८७१ सख्या	८०,२९९	

यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि ऊपर जो तालिका दी गयी है, उसमे उन सभी उद्योगों का उल्लेख नही किया गया है, जिन्हे सरकार द्वारा संरक्षण प्राप्त है। इस तालिका से यह भी स्पष्ट नही होता है कि विभिन्न उद्योगों को किस अंश तक सरकारी संरक्षण प्राप्त है। इससे केवल इतनी ही बात प्रकट होती है कि जिन बहुत-से उद्योगों ने पिछले २० वर्षो के अन्दर प्रगति की है, वे अधिकतर सरकारी सरक्षण और सहायता पर ही बढ़ सके है।

यह सच है कि गृहोद्योगों और ग्रामोद्योगों को इस तरह जो मदद दी जायगी, उसका बोझ उपभोक्ता और करदाता पर ही पड़ेगा। परन्तु उपर्युक्त अंकों से यह स्पष्ट हो गया होगा कि ये गरीब तो बड़े उत्पादनवाले उद्योगों के इस बोझ को चौथाई शताब्दी से उठाते आ रहे हैं। इसलिए जब हम ९२'८ प्रतिशत जनता को पूरा रोजगार देने तथा उसका जीवनमान ऊँचा करने के लिए यही कदम उठाना चाहेंगे, तो उसकी प्रतिक्रिया कोई भिन्न होगी, ऐसी बात नही है।*

ऐसा हो सकता है कि सक्रमण-काल के प्रारम्भ में सहकारी क्षेत्रो द्वारा उत्पादित सामग्री महँगी हो और बहुत-से मामलों मे केन्द्रीकृत क्षेत्रों (कारखानो) द्वारा उत्पादित सामग्री के मुकावले कम अच्छी हो। लेकिन यदि सामग्री के उत्पादन के प्रसंग में सामाजिक मूल्य (Social Cost) पर भी विचार किया जाय, तो केन्द्रीकृत क्षेत्र (कारखाने) द्वारा उत्पादित सामग्री सहकारी क्षेत्र द्वारा उत्पादित सामग्री की तुलना मे सस्ती नही पडेगी। इसके साथ ही सुधरे हुए यान्त्रिक कौशल और यन्त्र नयी व्यवस्था मे सुलभ किये जायं तथा इन्हे अपने पैरो पर खड़ा होने में शासन सहायता करे, तो सहकारी क्षेत्रो द्वारा उत्पादित सामग्री, केन्द्रीकृत क्षेत्रो (कारखानों) द्वारा उत्पादित सामग्री की तुलना मे न तो हीन ठहरेगी और न महँगी पड़ेगी। यह अवस्था अर्थात् सहकारी क्षेत्रो की सहायता तभी तक आवश्यक होगी, जब तक कि एक ही सामग्री सहकारी

---

*— ईस्टर्न एकानामिस्ट प्रकाशन के "रेकार्ड्स स्टेटिस्टिक्स" वाल्यूम ९, नं० ३, पृ० २७-२८ मे।

क्षत्र तथा केन्द्रीकृत क्षेत्र (कारखाने) द्वारा उत्पादित हो और दोनो मे प्रतिद्वन्द्विता चल रही हो।

स्पष्ट है कि जो शासन विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था कायम करना चाहता है, उसे विकेन्द्रीकरण की दिशा में अपनी उद्योग-नीति को असदिग्ध रूप में बदलना ही होगा। जैसा कि पहले बता दिया गया है, उसे उत्पादन के क्षेत्र बॉट देने होंगे और स्वतत्र कारीगरो तथा सहकारी उद्योग-समितियो के लिए सुरक्षित उद्योगों के क्षेत्र मे काम करनेवाले केन्द्रित उद्योगो को क्रमशः विसर्जित कर देने के हेतु से सक्रमण-काल के लिए उत्पादन का कोई समन्वित कार्यक्रम भी बना लेना होगा। इसी प्रकार इनके द्वारा बनी चीजों की कीमतों में समानता लाने का यत्न भी करना होगा और जो सरक्षण अथवा आश्रय केन्द्रित उद्योगों को दिया जा रहा है, वह अव स्वतंत्र कारीगरो तथा सहकारी समितियो के क्षेत्रो मे काम करनेवाले उद्योगों को देना होगा। जब तक साफ-साफ तौर पर ऐसी नीति कायम करके उस पर अमल नही किया जायगा, केवल कुछ करोड़ की सहायता देने से विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था कायम हो जायगी, यह उम्मीद करना बेकार है।

जहाँ तक विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था का सम्बन्ध है, सन् १९४८ के उद्योग-नीतिवाले वक्तव्य और हाल ही में जो सशोधन उसमे किया गया है—इनसे कोई अन्तर नही पड़ता। वर्तमान संशोधन से तो मात्र शासकीय क्षेत्र का विस्तार किया गया है और वहुत-से उद्योगों में खानगी और शासकीय, दोनो का सम्मिलित नियन्त्रण स्थापित कर दिया गया है। हम यह मान सकते हैं कि खानगी क्षेत्र को अधिक सीमित कर दिया गया है। किन्तु उत्पादन की

केन्द्रित उद्योग-पद्धति की नीति में कोई बुनियादी फर्क नही किया गया है। और न कर्वे-समिति की सिफारिशों को उसमें स्वीकार कर उन्हें सम्मिलित किया गया है। अम्बर चरखे के बारे में शासन ने जो रुख अख्तियार किया है, उससे भी यह स्पष्ट है कि जहाँ उत्पादन का साधन अच्छा है, वहाँ भी सरकार विकेन्द्रीकरण को स्वीकार नही करना चाहती।

औद्योगिक संगठन और प्रबन्ध

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, नयी उद्योग-प्रणाली में तीन श्रेणियाँ होंगी। स्वतंत्र कारीगरवाली श्रेणी में उत्पादन के जो भी साधन होंगे, उन पर कारीगर का अपना स्वामित्व होगा। जिन साधनों को व्यक्ति खरीद नहीं सकेंगे, उन पर समाज का स्वामित्व होगा। उत्पादन की विविध प्रक्रियाओं की देखभाल और संचालन सहकारी उद्योग-समिति या उसकी शाखाएँ करेंगी। तीसरी अर्थात् सामाजिक श्रेणी में उद्योग पर पूर्णरूपेण समाज का, राज्य का या उद्योग-संस्थानों का स्वामित्व होगा। परन्तु रोजमर्रा के कार्य का संचालन कामगारों के हाथों में ही होगा। चूँकि इनके द्वारा तैयार किये गये माल की कीमतों का असर संपूर्ण समाज पर होगा, इसलिए कीमतों का निश्चय करनेवाली कमिटी में उपभोक्ताओं के प्रतिनिधि भी होंगे। कीमतों का निर्णय इस प्रकार किया जायगा कि उसमें से उत्पादन का खर्च निकल आये, उद्योग में काम करनेवाले कामगारों को उचित पारिश्रमिक—कम-से-कम निर्वाह योग्य—मिल जाय और इनके अलावा उसमें से इतनी बचत हो सके

कि जिसका एक हिस्सा उद्योग मे नये-नये संशोधन के लिए दिया जा सके, एक हिस्सा उद्योग के संचालन के लिए उपलब्ध रहे और शेष राज्य की आय में उद्योग की तरफ से राजस्व के रूप में दिया जा सके।

गाॅव-सभा को इस बात पर सतर्कतापूर्वक ध्यान रखना होगा कि कीमतों मे बहुत ज्यादा चढ़ाव-उतार न हो तथा सामान्य मूल्य स्तर बराबर कायम रहे। इस कार्य के लिए उसे अपने पास कृषिजन्य पदार्थों और औद्योगिक पदार्थों का अच्छा-सा भण्डार रखना पड़ेगा।

खनिज द्रव्यों से सम्बन्ध रखनेवाले उद्योगों पर राज्य का ही स्वामित्व होगा। तथापि उनका संचालन राज्य द्वारा तमाम उद्योगो के लिए निर्धारित विकास की सामान्य नीति के अनुसार उद्योगों में काम करनेवाले कामगार ही करेंगे। सुरक्षा सम्बन्धी उद्योगों का स्वामित्व—जब तक वे रहेंगे—राज्य का ही होगा।

प्रत्येक क्षेत्र मे उत्पादन के साधन, कच्चा माल, पूँजी, शास्त्रीय ज्ञान की मदद और उत्पादन की बिक्री का प्रबन्ध, इन सबकी समुचित व्यवस्था करनी होगी। प्रत्येक कारीगर और सहकारी उद्योग-समिति को ये सब पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हो जायँ, इसलिए बहुत-सी बहुकाजी सहकारी समितियों की स्थापना करनी होगी। स्वतंत्र कारीगर जिन औजारों को काम में लायेंगे, उन्हें लोग अपने क्षेत्र मे ही बना लिया करेंगे। किन्तु जहाँ यह संभव नहीं होगा, वहाँ बड़े कारखानों द्वारा इनका निर्माण किया जायगा और बहुकाजी सहयोग-समितियों की मार्फत ये कामगारो को सस्ती कीमत मे उपलब्ध कर दिये जायँगे। इसी प्रकार जहाँ-जहाँ कारीगर अपने काम के लिए

कच्चा माल अथवा पूँजी प्राप्त नही कर सकेंगे, वहाँ यही बहुकाजी सहकारी समितियाँ इनको कामगारो के लिए उपलब्ध कर देंगी। ◆◆◆

: ५ :

यंत्र, शक्ति और औद्योगिक शोध

समाज मे एक भारी गलतफहमी फैली हुई मालूम होती है कि सर्वोदय यत्रमात्र और वैज्ञानिक प्रगति का विरोधी है और यह कि उत्पादन के पुराने तरीकों से ही चिपटा रहना चाहता है तथा समाज को दरिद्रावस्था में रखना चाहता है। यह चित्रण बिलकुल गलत और उल्टा है। सर्वोदय यन्त्रों और वैज्ञानिक प्रगति का विरोधी नही। वह मनुष्य की कार्यशक्ति वढ़ाने, उसे थकानेवाले एक-सा काम से वचाने और फुरसत के समय का उपयोग मनुष्य-जीवन को आनदमय वनानेवाली उच्च नैतिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों में कर सके, इस हेतु से सर्वोदय यन्त्र और विज्ञान, दोनों से काम लेना चाहता है। परन्तु वर्तमान औद्योगिक सभ्यता में जो असंख्य बुराइयाँ घुस गयी है, उनका वह अवश्य विरोधी है।

समाज मे जव यन्त्र को स्थान मिला, उस युग की आर्थिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों का परिणाम आज की उद्योग-प्रधान सभ्यता है। पूँजीवाद ने उसको स्वीकार किया और परिपुष्ट किया, जिसका मुख्य स्वार्थ इस वात में था कि वह मजदूरी में वचत करके उत्पादन वढाये, वड़े-वड़े वाजारों पर कब्जा करे और मनमाना मुनाफा कमाये। इसलिए उसने

मजदूर के हितों का कभी खयाल नहीं किया। अपनी वस्तु को जब कारीगर बनाने लगता है, तब उसे सुन्दर बनाने के लिए उसके अन्दर अपनी सारी कला उँड़ेल देता है। परन्तु कारखाने-दार---पूंजीवाद---ने इसका भी कभी खयाल नही किया। तव वह यह तो सोच ही कैसे सकता था कि समाज मे हर मनुष्य को पूरा समय और पेटभर खाना देनेवाली रोजी मिलनी चाहिए। नतीजा यह हुआ कि कले बेकारी बढाने लगी, कारीगरो के हाथों से सृजन का गौरव और आनन्द छीनने लगी और अन्त मे केन्द्रित उद्योग-प्रणाली मे मनुष्य यन्त्र का एक जड़ पुर्जा मात्र बन गया। इस तरह वस्तुओं के पर्वताकार ढेर बनाने के साथ-साथ कारखानों ने ढेरों से ऐसे मनुष्य बनाना शुरू कर दिया, जिनका निवास शहरों की गन्दी बस्तियाँ हो गयी और जो सारा पुरुषार्थ खो चुके। उसका काम बस इतना रह गया कि यन्त्र जैसी हलचलो की जिस वक्त माँग करे, चुपचाप यन्त्र की ही तरह मनुष्य वैसी हलचले करता रहे। इससे उत्पादन के अन्दर से व्यक्तित्व की झलक समाप्त हो गयी और मनुष्य मानवता से शून्य बन गया।

यन्त्र-शास्त्र की प्रगति और विकास भी पूँजी और व्यापार के आश्रय मे हुआ। इस कारण उसने मनुष्य और समाज की परवाह न कर केवल मुनाफा बढानेवाले यन्त्रो के निर्माण पर ही ध्यान दिया। जब विज्ञान और यन्त्रशास्त्र पूँजी के गुलाम बन गये, तब और दूसरा परिणाम क्या हो सकता था? और इन दोनो का साथ इतने लम्बे अर्से से चला आ रहा है कि अब यह लोगों के अभ्यास की चीज बन गयी है, इसलिए इसमे उन्हे कोई

अन्याय नहीं दिखाई देता। यही नही, खुद यन्त्र-शास्त्र की प्रगति भी रुक गयी है। इस तरह पूँजीवाद के कारण यन्त्र-शास्त्र को हानि उठानी पड रही है, जब कि पूँजीवाद निर्लज्ज बनकर यन्त्र से पूरा लाभ उठा रहा है।

अब समाजवाद आ गया है। परन्तु पूँजीवादी उद्योग-प्रणाली की वुराई को वह भी पूरी तरह दूर नही कर पाया है। दुर्भाग्यवश यह लोग मानते है कि व्यक्तिगत स्वामित्व की प्रथा समाप्त होते ही इस उद्योग-पद्धति की बुराइयाँ अपने-आप चली जायेगी। परन्तु ध्यान रहे कि औद्योगिक क्षेत्र की वर्तमान वुराइयो की जड़ जिस प्रकार उत्पादन के साधनो पर व्यक्तिगत स्वामित्व है, उसी प्रकार उत्पादन की वर्तमान पद्धतियाँ भी है। इसलिए इन बुराइयों को अगर हम दूर करना चाहते है, तो हमे इन दोनों कारणों पर प्रहार करना पड़ेगा। अर्थात् आज जो मुट्ठीभर आदमियों के हाथों में उत्पादन के सारे साधन पडे हुए है, इस प्रथा को नष्ट करना होगा और इसके साथ ही ऐसे यन्त्रो का उपयोग भी बन्द कर देना होगा, जिसमें गिनती के कुछ आदमियो के हाथो मे यन्त्रो का चालन और स्वामित्व चला जाता हो, जिनसे आदमी वेकार बनते हों, जो मनुष्य के शरीर और बुद्धि को पंगु बनानेवाले हों और जो उसकी निर्माण-शक्ति को और मनुष्यत्व को नष्ट करनेवाले हो। इस प्रकार सर्वोदय यन्त्र की अपार शक्ति को भी काम मे लेना चाहता है और साथ ही मनुष्य का आर्थिक तथा सांस्कृतिक कल्याण भी चाहता है। इससे स्पष्ट है कि वह यन्त्रों का विरोधी नही। वह उन तमाम यन्त्रों का और शक्तियों का स्वागत करेगा, जो सबका भला करने-

वाले होगे। वह औद्योगिक क्रान्ति का विरोधी नहीं। असल में वह विरोधी है औद्योगिक क्रान्ति के उस स्वरूप और हेतुओं का, जिनको पूँजीवाद ने अठारहवी शताब्दी मे जारी किया था।

मतलब यह कि सर्वोदय अर्थ-व्यवस्था के आधारस्वरूप सिद्धान्तो का जिसमें भंग न हो, इस प्रकार यन्त्रों का उपयोग किया जायगा। और इस बात की पूरी सावधानी रखी जायगी कि इनके दुरुपयोग की जरा भी गुजाइश न रहे। नही तो वह समाज को पुन. इस दुरवस्था में पहुँचा सकता है। अत्यधिक उत्पादन और केन्द्रीकरण से बचते हुए समाज की जरूरतें पूरी करने के लिए जितना अधिक-से-अधिक उत्पादन किया जा सके और अधिक-से-अधिक लोगों को काम दिया जा सके, इन बातों को ध्यान मे रखकर यन्त्रो की कार्यशक्ति पूरी बढायी जायगी। हॉ, अधिक-से-अधिक किसे कहा जाय, इसकी परिभाषा भी समय-समय पर आर्थिक परिस्थितियॉ, आबादी की बढ़ती, उत्पादन के साधन और शास्त्रीय शोधों की प्रगति के अनुसार स्वभावतः बदलती रहेगी।

इन तमाम विचारो को ध्यान मे रखते हुए उद्योगों की मदद के लिए जितना भी संभव होगा, सब प्रकार की शक्तियों का उपयोग किया जायगा। बिजली, अणु, सूर्य आदि नयी प्रकार की शक्तियों के जो शोध हुए है, उनसे अब केन्द्रीकरण की बुराइयों से बचते हुए शक्ति का उत्पादन, वितरण और उपयोग सभव हो गया है। जहॉ शक्ति का उत्पादन केन्द्रीकरण के बगैर सभव नही होगा, वहाँ उत्पादन के कारखाने पर स्वामित्व समाज का या प्रादेशिक परिषद् का होगा।

शक्ति के साधनों की खोज में और यन्त्रों का उपयोग करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा जायगा कि हर स्थान के तमाम साधनों का पूरा-पूरा उपयोग हो जाय। स्वतंत्र कारीगरों और सहकारी उद्योग-समितियों की जरूरतों को पूरी करने के लिए स्थानीय शक्ति-साधनों का उपयोग सबसे पहले किया जायगा। जहाँ तक संभव होगा, शक्ति का उत्पादन भी विकेन्द्रित पद्धति से ही किया जायगा। और इसके साथ जिन-जिन उपायों से शक्ति उपलब्ध हो सकेगी, उनका भी उपयोग किया जायगा। तब खेती और उद्योगसम्बन्धी अलग-अलग काम के लिए अलग-अलग प्रकार की शक्ति का उपयोग किया जा सकेगा। उदाहरण के लिए खेती और घानी में बैल, भैंसे और ऊँट काम में लिये जायेंगे। कुएँ से पानी निकालने के लिए पशुओं से भी काम लिया जा सकता है और यन्त्रों से भी, जैसी जहाँ जरूरत हो। माल के पहुँचाने-लाने में पशुओं और भाफ तथा बिजली का भी उपयोग हो सकता है।

उत्पादन बढ़ाने, बेकारी मिटाने और मानव-जीवन के उच्च ध्येयों की सिद्धियाँ प्राप्त करने में सबको सहूलियत हो, इस हेतु से उद्योग के सभी क्षेत्रों में विज्ञान और यन्त्रों के शोध को प्रोत्साहन दिया जायगा। प्रत्येक उद्योग के साथ उससे सम्बन्ध रखनेवाला एक शोध का विभाग भी होगा। इस शोध-विभाग से जो-जो भी उद्योग लाभ उठायेंगे, वे ही इसका संचालन-व्यय भी उठायेंगे। एक केन्द्रीय शोध-परिषद् होगी, जो इन सबके शोधों का समन्वय करती रहेगी। इन शोध-संस्थानों का एक उद्देश्य यह होगा कि स्वतंत्र रूप से काम करनेवाले कारीगरों के क्षेत्र

का विस्तार किस प्रकार हो सकता है, इसकी सभावनाओ की खोज करे और ऐसे यन्त्र भी ढूंढ निकाले कि जिनकी मदद से उन उद्योगो को भी विकेन्द्रित किया जा सके, जिनका विकेन्द्रीकरण आज असभव माना जाता है। इससे आज का क्रम बिल्कुल उलट जायगा। तव शोध-परिषद् का यह यत्न होगा कि स्वतंत्र कारीगर और सहकारी उद्योग-समितियों के क्षेत्र की तरफ पूरा-पूरा आवश्यक ध्यान दे। ◆◆◆

: ६ :

बैंक, सिक्का और बीमा

आज बडे-बड़े उद्योगो को चलानेवाली शक्तियाँ सिक्का और बैंक है। बैंक पूंजी उपलब्ध कर देते है और स्टेट बैंक तथा सेन्ट्रल बैंक चालू सिक्के तथा व्याज के नियन्त्रण द्वारा चलन की नीति का निर्धारण करते है। इससे उपभोग और बचत के बीच सामंजस्य कायम होता है और अर्थ-व्यवस्था के हेतुओं को सिद्ध करने के लिए बचत को मार्ग मिल जाता है। यह कहने की कोई आवश्यकता नही कि आज शासन और बैंक मुद्रा सम्बन्धी जिस नीति पर चल रहे है और जो कार्यक्रम अपनाते जा रहे हैं, उससे बड़े-बड़े उद्योगो का ही हित हो रहा है। शुरू-शुरू मे वस्तु-विनिमय की पद्धति मे जो दोष दिखाई पड़े, उनको दूर करने के लिए ही मुद्रा प्रचलित की गयी, इसके साथ ही यह भी खयाल था कि इससे हिसाव-किताव करने और वस्तुओ का मूल्य-निर्धारण करने मे सुविधा होगी। किन्तु आगे चलकर

इसने ऐसा महत्त्व प्राप्त किया कि लोग इसका ही संग्रह करने और अधिक-से-अधिक इसे अपने पास रखने के लिए प्रवृत्त होने लगे। आज तो यह ऐसा साधन हो गया है कि इसकी सहायता से सारे काम अपने-आप बन जाते है। इसीके आधार पर आज लोगों की सामाजिक स्थिति का निर्णय होता है। कहाँ तो इसे आर्थिक मूल्य-मापन का साधन माना गया था और कहाँ आज यह मनुष्य के सामाजिक और नैतिक मूल्यांकन का साधन वन गया। इसके आकर्षण का कौशल और प्रयत्न-पूर्वक उपयोग करने से सचाई, ईमानदारी और दानशीलता के स्थापित मूल्यो पर आघात पहुँचता है और इससे मनुष्य को इस प्रकार प्रवृत्त किया जाता है कि वह आचार-शास्त्र को ताक पर रखकर अपनी व्यवस्था का मूल्यांकन करे, क्योंकि उन्होंने सव बातों का आधार अर्थलिप्सा को मान लिया है। इसका महत्त्व इसीसे नही आँका जाता है कि इससे हमारी भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति होती है, वरन् इससे भी आँका जाता है कि यह समाज में प्रतिष्ठाप्रद स्थान सुलभ कराता है। इससे जनमत पर प्रभाव डाला जा सकता है, अधिकारियों को अपने अनुकूल वनाया जा सकता है, आलो-चकों का मुँह वन्द किया जा सकता है और मनुष्य की नैतिकता एवं परिवार और राज्य के प्रति जो सहज निष्ठा होती है, उसे समाप्त भी कर देता है। व्यापक जनसम्पर्क के साधन जैसे, समाचारपत्र, रेडियो, विद्यालय आदि का नियंत्रण वही करते है, जिनके पास पैसा होता है और इन नियंत्रित साधनों से वे अपने ही मत एवं हितो का प्रचार करते हैं।

लेकिन इसका यह मतलब नही कि मुद्रा और बैंकिंग ऐसी चीजे है, जिनसे विकेन्द्रित और समानता के आधार पर स्थापित अर्थ-व्यवस्था के उन्नयन मे कोई सहायता नही मिल सकती। ये दोनो चीजे तो तब तक रहेगी, जब तक कि उत्पादन का उपयोग विनिमय अथवा बिक्री के लिए किया जायगा। साथ ही समय और दूरी जब तक आर्थिक व्यवस्था के सम्पादन मे विचारणीय तत्त्व रहेगे, तब तक भी उनका उपयोग होता ही रहेगा। फिर भी इसकी विषसचरण-शक्ति को कुण्ठित करके हमे ऐसा प्रबन्ध करना होगा कि समाज के आर्थिक, पारस्परिक और राजनीतिक जीवन को यह कलुषित न कर पाये।

सर्वोदय जिस आदर्श अर्थ-व्यवस्था को लाना चाहता है, उसमे बिक्री और विनिमय के लिए उत्पादन नही होगा। उस अर्थ-व्यवस्था मे हर मनुष्य उत्पादनकर्ता होगा। और वह समाज के सर्वसामान्य भण्डार अथवा कोष में अपनी तरफ से अधिक-से-अधिक पूर्ति हो, इस हेतु से काम करेगा। हर मनुष्य अपनी शक्ति और योग्यता के अनुसार पूरा काम करेगा, और यह देखना सबका कर्तव्य होगा कि हर मनुष्य की जरूरतों की पूर्ति हो जाय। जैसा कि पहले बताया गया है, बड़े समाज में व्यक्तियों को एक-दूसरे के साथ आर्थिक सम्बन्धों में बाँधनेवाले बन्धन वही होंगे, जो एक परिवार में होते है। हर आदमी समझेगा कि वह अपनी और समाज की जरूरतों को पूरी करने के लिए दूसरों के साथ काम कर रहा है। जिस समाज के अन्दर उत्पादन के प्रेरक हेतुओं मे मौलिक परिवर्तन हो जायगा, उसमें

स्वभावतः सिक्के और बैंकों के प्रयोजन में भी जरूर ऐसा ही परिवर्तन हो जायगा। व्याज कमाने के लिए तब कोई बचत नही करेगा या पैसा किसी काम में नही लगायेगा। तब तो समाज की सेवा और उसकी जरूरतों की पूर्ति करना प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य है, इस नैतिक भावना से प्रत्येक मनुष्य उत्पादन और बचत करेगा और इसी उद्देश्य से पूँजी को काम में लगायेगा।

परन्तु जब तक यह कर्तव्य-भावना इतनी बलवान् नही हो जाती कि दूसरी प्रेरणाओं को अनावश्यक कर दे, तव तक विक्री और विनिमय के लिए उत्पादन होता रहेगा और ये संस्थाएँ समाज में रहेंगी ही। परन्तु उनके स्वरूप और काम मे अवश्य उत्तरोत्तर अंतर होता जायगा। एक विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था के लिए उनका उपभोग होने लगेगा और मुट्ठीभर शोषक-वर्ग के स्वार्थ-साधन के वदले सारे समाज के हित के लिए उनसे काम लिया जायगा।

इसलिए वैक ग्रामीण जनता की सेवा करेगे। स्वतंत्र कारीगर और सहकारी उद्योग-समितियों के लिए पूँजी मुहैया करना उनका काम होगा।

खानगी व्यापारी वैकों के लिए उस व्यवस्था मे कोई स्थान नही होगा। मुनाफा कमाने के लिए भी वैंकों का उपयोग नही होगा। केवल दो प्रकार के वैक होंगे। एक स्टेट वैक और दूसरा सहकारी वैक। सहकारी वैक ग्रामीणो से उनकी बचत का धन लेकर उसका उपयोग अपने गाँव में ही स्वतंत्र कारीगर, सहकारी उद्योग-समिति, सहकारी खेती, सामूहिक खेती और व्यक्तिगत खेती करनेवालों की जरूरतों की पूर्ति में करेगा।

में इस बात का भी लेखा रखेगा कि प्रत्येक आदमी ने समाज के लिए कितने घण्टे प्रत्यक्ष श्रम किया है। फिर वहुकाजी सहकारी समिति या श्रम वैंक अपने पास एक ऐसा तख्ता भी रखेगा कि किस प्रकार के श्रम के बदले में कौन-कौन चीज कितनी मात्रा मे दी जा सकती है या किस प्रकार की अन्य सेवा कितनी दी जा सकती है। इस तख्ते के अनुसार अपने श्रम के बदले में व्यक्तियों को निश्चित मात्रा मे वस्तुएँ अथवा सेवाएँ मिल सकेंगी। अगर उत्पादन की पद्धति में फर्क हो जायगा और उसके फल-स्वरूप उत्पादन की मात्रा भी बढ जायगी, तब स्वभावतः श्रम के और वस्तुओं के मूल्य मे भी फर्क हो सकता है। गाँव-सभा यह आज्ञा जारी कर सकती है कि गाँव मे पैदा होनेवाली कुछ चीजे ऐसी होंगी, जिनके लेन-देन के व्यवहार श्रम वैंक की मार्फत ही होंगे।

गाँव मे अथवा ऊपर के हल्कों में भी शासकीय कर्मचारियों को उनके वेतन का एक हिस्सा प्रत्यक्ष वस्तुओं के रूप मे मिलेगा। ये चीजें तत्काल दे दी जायँगी या इनके कूपन्स कर्मचारियो को दे दिये जायँगे। वेतन का शेष हिस्सा राष्ट्रीय सिक्कों के रूप में दिया जा सकता है। क्योंकि गाँव-गाँव अथवा प्रदेश-प्रदेश के बीच के व्यवहार राष्ट्रीय सिक्कों के द्वारा ही होंगे। इसके अलावा जहाँ विनिमय का दूसरा कोई साधन तुरन्त उपलब्ध न हो सकेगा, वहाँ हिसाव-किताव सिक्को के रूप में ही रखा जायगा और वही विनिमय का साधन भी रहेगा। परन्तु इस पद्धति मे सिक्के का महत्त्व इतना घट जायगा कि व्यक्ति और समाज को नुकसान पहुँचने की संभावना बहुत कम रह जायगी।

सिक्के के मूल्य में घटी या बढती बहुत कम होगी। और उसे रोकने के सारे प्रयत्न निष्फल हो जाने पर अगर कमी होगी भी, तो उसका असर जैसा कि वर्तमान अर्थ-व्यवस्था में होता है— इतना भारी नही होगा। और एक साधारण आदमी के प्रति-दिन के व्यवहार पर आज उसका जितना असर हो रहा है, उतना नही होगा।

आज की जटिल उद्योग-प्रणाली में पूँजी जुटाने में व्याज की दर बड़ा काम करती है। भिन्न-भिन्न उद्योगों मे कितनी पूँजी लगायी या न लगायी जाय, इस हेतु से व्याज की दर घटायी-बढायी जाती है।

सर्वोदय की अर्थ-व्यवस्था मे स्वतंत्र कारीगर उद्योग-प्रणाली का एक बहुत बडा अग होगा। और चूँकि इस क्षेत्र के उत्पादन के लिए इतनी भारी पूँजी की जरूरत नही होगी कि जिसे वह खुद या सहकारी उद्योग-समिति या सहकारी बैंक की मदद से भी प्राप्त न कर सके। अत. पूँजी की माँग और पूँजी लगानेवालों को राजी करने के बीच मेल बैठाने के लिए व्याज की दरों को कम-ज्यादह करने की जरूरत नही पडती। इसके अलावा बड़े कारखानों में कितनी पूँजी लगायी जाय, यह व्याज की दरों के आधार पर निश्चय नही किया जायगा। क्योंकि किस उद्योग में या जन-सेवा के काम मे कितना धन लगाया जाय, यह कई अन्य वातो पर—उदाहरणार्थ, हर मनुष्य को पूरा काम देना, जनता की अधिक-से-अधिक भलाई के लिए प्राकृतिक साधनो का विकास करना, और ऊपर बतायी उद्योग-प्रणाली द्वारा उत्पादन को अधिकतम बढाना इत्यादि नीतिसम्बन्धी बातो पर—निर्भर

होगा। यह भी ध्यान रहे कि इस योजना में बतायी प्रणाली में बड़े कारखाने व्यक्तिगत सम्पत्ति रहेंगे ही नहीं, जिससे उन्हें चलाने के लिए उन्हें व्याज देकर पूँजी जुटाने की चिन्ता करनी पड़े। इसलिए किस उद्योग मे कितनी पूँजी लगायी जाय, इसका विचार उससे कितना मुनाफा मिल सकता है अथवा पूँजी पर कितना व्याज देना होगा, इस पर निर्भर नही होगा।

सर्वोदय की आदर्श अर्थ-व्यवस्था मे बेकार पड़ी हुई पूँजी को किसी काम मे लगाने के लिए व्याज का लालच नही देना होगा। आज तो व्याज न केवल सुस्त धनवानों के लिए आय कमाने का साधन है, वल्कि बचत करके उसे उद्योगों मे लगाने के लिए प्रलोभन देनेवाली वस्तु भी है। और यह तो हर विकासशील अर्थ-व्यवस्था में होगा, जो चाहती है कि उसकी यन्त्र-सामग्री उत्तम रहे और वह अधिक-से-अधिक उत्पादन देती रहे। उसे लोगों को बचत करने और उसे खेती तथा उद्योगों के विकास में लगाने का प्रलोभन देना ही होगा। परन्तु सर्वोदय अर्थ-व्यवस्था मे हर आदमी खुद यह समझेगा कि उत्पादन की प्रक्रियाओं का सुधार और सगठन सब इसलिए है कि मनुष्य बचत करके उसे समाज की सेवा में अर्पण कर दे। वहाँ इसके लिए व्याज के प्रलोभन की जरूरत नहीं होगी। हाँ, इस स्थिति को पहुँचने में देर लग सकती है, जब कि हर आदमी इतना समझदार बन जायगा। इसलिए जब तक इस स्थिति को समाज नही पहुँच जाता, तब तक संक्रमण-काल की अर्थ-व्यवस्था में व्याज के लिए भी स्थान रहेगा। परन्तु उसका महत्त्व और कार्य उत्तरोत्तर घटते जायेंगे। उद्देश्य यही होगा कि क्रमशः ऐसा ही हो और

उसका स्थान समाज के लिए कोई अधिक लाभदायक प्रेरक हेतु ले ले।

बैकों के यन्त्र को चलाने के लिए भी व्याज की जरूरत नही रहेगी, क्योंकि खानगी व्यापारी बैक तो सब बन्द हो जायेगे और सहकारी बैंक तथा स्टेट बैंक का काम-काज समाज खुद अपना आवश्यक सेवा-कार्य समझकर चला लेगा। हाँ, जहाँ सार्वजनिक सेवा के कार्यो पर धन लगाया जायगा, उनसे समाज को [illegible] लाभ हो रहा है, यह हिसाब लगाने के लिए भले ही व्याज [illegible] योग एक नाप के रूप में हो सकता है। सक्रमण-[illegible] द्वारा पूंजी इकट्ठी करके उसे उद्योगों में लगाने [illegible] के लिए भी व्याज रह सकता है। यह पहले ही [illegible] है कि व्याज की जगह दूसरे प्रलोभन [illegible] यत्न किया जायगा, विशेषकर बचत [illegible] के लिए। व्याज को नीचे लिखे [illegible] जा सकता है .

साधन उसके अपने होंगे, तो तमाम लोगों की आय लगभग समान हो जायगी और तब कोई आदमी इतनी कमाई नहीं कर सकेगा कि वह बचत करके व्याज पर रुपये दे सके और उसे अपनी आमदनी का एक बड़ा साधन बना सके।

(२) कर्जो पर व्याज नही लिया जायगा। परन्तु कर्जदार से यह जमानत जरूर ली जायगी कि वह ली हुई रकम लौटा देगा।

(३) जब समाज को जरूरत होगी, तब उसे बचत चन्दे या दान के रूप में दे दी जायगी। अर्थात् न रकम ही दी जायगी, न उस पर कोई व्याज दिया जायगा और न लौटायी ही जायगी।

यह जरूरी नहीं कि ये तीन कदम एक के बाद एक लिये जायँ। वे एक साथ लिये जा सकते हैं और समाज इन तीनों के लिए एक साथ चन्दा माँग सकता है। ज्यो-ज्यों अधिकाधिक लोग सर्वोदय के आधारभूत सिद्धान्तों को समझने लगेंगे और समाज सर्वोदय के आदर्श की तरफ सच्ची प्रगति करता जायगा, पहले प्रकार के व्यवहार कम होते जायँगे और उनके स्थान पर दूसरे और तीसरे प्रकार के व्यवहार बढ़ते जायँगे।

बीमा

पहले कहा जा चुका है कि सर्वोदय-समाज में प्रतिस्पर्धा का स्थान सहयोग ले लेगा। और हर मनुष्य यह समझेगा कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति की जरूरतें पूरी करने की जिम्मेवारी समाज और व्यक्ति, दोनों की है। खुद योजना का उद्देश्य बेकारी को पूरी तरह मिटा देना है और यह भी कि प्रत्येक ुष्य की आय इतनी हो कि वह मनुष्य के लिए कम-से-कम

आवश्यक सुख-सुविधाएँ प्राप्त कर सके। उसे भौतिक जरूरतों का अभाव खटकने न पाये। तब बेकारी लगभग पूरी तरह से नष्ट हो जायगी। अगर रही, तो केवल उतने ही समय तक, जब कि एक काम को छोड़कर मनुष्य दूसरे काम को हाथ मे लेता है। यह समय भी कम-से-कम होगा, क्योंकि उस अवस्था मे मनुष्य निरा मजदूर नही रह जायगा, जिसे अपनी रोजी के लिए दूसरे का मुँह ताकना होता है। वह खुद अपना मालिक होगा और काम करने के औजार भी उसके अपने होंगे। चूँकि इस योजना में मुख्यत मनुष्य खुद ही स्वतत्र रूप से काम करेगा, वह अपने काम के औजार बहुकाजी सहकारी समिति से उधारी पर ले लेगा और उनकी कीमत छोटी-छोटी किस्तो में आसानी से चुका देगा।

इस नयी व्यवस्था मे बीमारी, बेकारी या बुढापे के समय भी किसीको चिन्ता नही करनी होगी, क्योकि बेकारी तो प्राय होगी ही नही और घर मे सबके पास काम होगा तथा सारे सामाजिक सम्बन्ध इतने निकट के और प्रेमभरे होंगे कि बीमारी, दुर्घटना और बुढापे में भी आर्थिक कष्ट नही होगा। इतने पर भी, खासकर सक्रमण-काल में, अगर जरूरत समझी गयी, तो गाँव-सभा बहुकाजी सहकारी समिति की मार्फत या प्रादेशिक अधिकारियों के सहयोग से किसीको बेकारी, बुढ़ापे, बीमारी, दुर्घटना और कहत के कष्ट न हों, इस हेतु से बीमे की कुछ योजनाएँ बना लेंगी।

: ७ :

व्यापार

प्रकट है कि जिस अर्थ-व्यवस्था में उत्पादन की पद्धति विकेन्द्रित है और स्थानीय जनता के अन्दर वस्तुओं का न्यायपूर्ण वितरण हो, इस दृष्टि से जहाँ वितरण संगठित कर दिया गया हो, वहाँ आज के जैसे व्यापार के लम्बे-चौडे फैलाव की जरूरत नही होगी। इसके लिए बहुत कम काम रह जायगा। जब उत्पादन समाज के सम्मिलित भण्डार के लिए होगा और बेचने या विनिमय के लिए नही होगा, तब व्यापार का सवाल ही न खड़ा होगा। जो कुछ पैदावार होगी, स्थानीय जरूरतो के अनुसार बाँट ली जायगी। और जो कुछ बचेगा, उसे जहाँ इन चीजो की कमी होगी, वहाँ इनकी पूर्ति के लिए भेज दी जायगी। वहाँ से उसके बदले मे कुछ मिलना ही चाहिए, इसका कोई खयाल तक नही करेगा।

परन्तु मान ले कि इस स्थिति को समाज न भी पहुँचा, तो भी एक वार अर्थ-व्यवस्था विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर कायम हो गयी, तो भी व्यापार का विस्तार अपने-आप कम हो जायगा। स्वतंत्र कारीगर और किसान अगर अपनी और परिवार की जरूरतों से ज्यादा उत्पादन करेंगे या जो विनिमय के लिए भी उत्पादन करेंगे, तो वे भी दूसरी चीजो के साथ अपनी पैदावार की अदल-बदल कर लेंगे अथवा अपनी स्थानीय बहुकाजी सहकारी समिति को उसे बेच देंगे। ये बहुकाजी सहकारी समितियाँ इस पैदावार को खरीदकर उसे किस्मवार छाँट लेंगी और

अपने भण्डार में रखकर उचित समय आने पर बेच दिया करेंगी। इसी प्रकार वे अपने क्षेत्र की सहकारी समितियों का माल भी खरीद लिया करेंगी। आपस मे व्यवहार करनेवाले व्यक्ति बदले मे सिक्का या दूसरी चीजे दे दिया करेंगे । अगर किसी क्षेत्र मे कोई चीज इतनी अधिक होगी कि उसे बाहर भेजना जरूरी हो जाय, तो बहुकाजी सहकारी समिति इसका प्रबन्ध आन्तरक्षेत्रीय अथवा आन्तरप्रादेशिक व्यापारी-सस्थान की मदद से कर लेंगी। सारा व्यापार सहकारी समितियों के हाथ में रहेगा। परन्तु उनके हाथ मे क्षेत्रों के भीतर का और आपस का व्यापार जाने से पहले अगर शुरू-शुरू में खानगी व्यक्तियों को व्यापार की इजाजत दे दी गयी, तो गाँव-सभाएँ उन पर कर वगैरह लगाकर उनका नियन्त्रण करेगी, जिससे शोषण की कही गुजाइश न रहे।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, व्यापार इस तरह नहीं किया जायगा कि जिससे स्वावलम्वन को हानि पहुँचे या परस्परावलम्बन का परिणाम परावलम्बन हो जाय । बल्कि बचत की चीजों की अदला-वदली से तो भिन्न-भिन्न स्थानों के प्राकृतिक साधनों का अधिक अच्छा और लाभदायक उपयोग होगा।

आतरराष्ट्रीय व्यापार भी मुख्यतः बचत की चीजों का ही होगा। राष्ट्र के पास जो चीज अधिक पैदा होगी या जिसे वह अधिक कुशलता के साथ वनायेगा, वही वह दूसरे राष्ट्र को देगा और उसके वदले में ऐसी चीजे लेगा, जिनकी उसे जरूरत होगी और खुद पैदा नही कर सकता होगा। दूसरे देशो के साथ का

यह सारा व्यापार एक व्यापारी सस्थान के हाथों मे रहेगा। आंतरराष्ट्रीय व्यापार में भी इस बात का पूरा ध्यान रखा जायगा कि वह आवश्यक वस्तुओ के बारे मे परावलम्बी न बने अथवा किसीका शोषण न हो अर्थात् अपने देश में अगर कोई चीज हम सस्ते मे बना सकेंगे, तो वह दूसरे देश पर जबर्दस्ती नही लादेगे, क्योकि इससे उस देश की अर्थ-व्यवस्था मे गड़बड़ी पैदा हो जायगी। हम अपने देश से कोई चीज तभी बाहर भेजेंगे, जब उस चीज की माँग दूसरा देश खुद स्वेच्छा से हमसे करेगा और फिर चीज उसी देश को भेजेंगे, जहाँ से माँग आयेगी।

: ८ :

यातायात

हमारे देश मे जो रेलें आयी और मोटरें चलाने लायक सड़कें बनी, इससे लोग यह समझने लगे है कि मनुष्यों के आवागमन और चीजों के लाने-ले जाने के साधन तेजी से बढ़ रहे है। परन्तु इन वर्तमान रेलवे लाइनों और बडी-बडी सडकों मे से बहुतेरी पराधीनता के जमाने में फौजो को राष्ट्रीयता के केन्द्रों पर जल्दी-से-जल्दी पहुँचाने के लिए बनायी गयी थीं, ताकि कही बगावत हो, तो उसे तुरन्त दबाया जा सके, अथवा दूर-दूर की फौजी छावनियों को एक-दूसरे के साथ जोड़ा जा सके या कच्चे माल को निकासी के लिए बन्दरगाहों पर पहुँचाया जा सके। या तो कानून और व्यवस्थासम्बन्धी जरूरतें पूरी करने

के लिए अथवा शहरों के अन्दर बने कारखानों के लिए, गाँवों से कच्चा माल ढोने के लिए ये सड़के और रेलवे लाइने बनायी गयी थी। फिर औद्योगिक केन्द्रो पर कच्चा माल भेजने और तैयार माल को गाँवो तक पहुँचाने के लिए रिआयती दरे रखी गयी। इसमे सन्देह नही कि विभिन्न जलवायुवाले तथा अनेक प्रकार के विषम भूखण्डवाले भारत जैसे विशाल देश मे बस्ती के प्रत्येक क्षेत्र को पक्की सड़को से सम्बद्ध कर देना अत्यन्त दुस्तर कार्य है। यदि यह कार्य कोई करना भी चाहे, तो इतनी सड़के बनानी पडेगी कि उसके लिए अत्यधिक रुपये और श्रमिक-साहाय्य की अपेक्षा होगी। फिर भी यह तो कहना ही पडेगा कि औद्योगिक बस्तियो और नगरो की तुलना मे गाँवों की बराबर उपेक्षा हुई है। ऐसे कई हिस्से देश मे है, जहाँ एक गाँव से दूसरे गाँव जाने के लिए केवल पगडंडियाँ है, जो निर्जन वन-प्रदेशो में से जाती है। कही-कही बहुत हुआ, तो बैलगाडियों के रास्ते भी इन पगडण्डियो के समानान्तर होते है। और भारी बरसात मे तो ये पगडण्डियाँ भी काम नही देती। तब तो इन गाँवो का आपसी और ससार से भी सम्बन्ध एकदम कट जाता है। फिर भी इनको ये असुविधाएँ सालभर सहनी ही पडती है। देश के छोटे-छोटे उद्योगो को या तो जान-बूझकर नष्ट कर दिया गया है या बड़े उद्योगों के साथ अत्यधिक रिआयत और इनकी उपेक्षा करके मरने दिया गया है। कच्चा माल गाँवो मे रहने नही दिया जाता। बड़े कारखानो मे बनी सस्ती चीजो से बाजार पट जाते है और स्थानीय ग्रामोद्योगों की चीजो की माँग खतम कर दी जाती है।

जब ग्रामोद्योगों के लिए आवश्यक कच्चा माल और उनमें बनी चीजों के बाजार भी इस तरह छिन जाते हैं, तब कारीगर बेकार हो जाते हैं। बगैर काम के अपनी कुशलता बच्चों को विरासत में देने के लिए कारीगर के पास कोई साधन नहीं रहता और उद्योग या तो मर जाते है या निकम्मे बन जाते हैं। गाँव के उद्योगों के विनाश की इस प्रक्रिया ने गाँवों को निर्धन बना दिया है तथा वहाँ के निवासियों का जीवन अत्यन्त हीन कोटि का कर दिया है। सालभर उपयोग में आनेवाली सड़को के अभाव ने गाँवों का बाहरी सम्पर्क समाप्त कर दिया है और उनके निवासियो को रोग, अज्ञान और निर्धनता का शिकार बनने के लिए मजबूर कर दिया है। यह सब तब तक नही बदलेगा और गाँवो की हालत भी नही सुधरेगी, जब तक यातायात और आवागमन के साधनो का सचालन जिस नीति के आधार पर अब तक चलता रहा, उसके हेतु को जड़ से नही बदल दिया जायगा। अब ऐसी नीति बनानी होगी कि गाँवों के बीच पूरे वर्षभर आवागमन जारी रह सके और उनका सम्बन्ध शहरों और औद्योगिक क्षेत्रो से हो जाय। अतः सबसे पहले यह काम हाथ मे लिया जायगा कि गाँवो तक जाने के और गांवों-गाँवों के बीच के आवागमन तथा यातायात के सम्बन्ध कायम हो जायँ। गाँवों के रास्ते सुधारे जायँ, नयी सड़कें बनायी जायँ और गाँवों को आपस में जोड़नेवाली तथा उनका सम्बन्ध क्षेत्र के शहरों से कायम करनेवाली रेलवे लाइनें बनायी जायँ। इसी हेतु को पूरा करने के लिए भीतरी जलमार्गों का भी विकास किया जायगा। और संक्रमण-काल में रेलवे,

मोटरों और समुद्र-किनारे के जहाजों के माल के लेने-ले जाने की दरों में इस प्रकार के सुधार कर दिये जायँगे कि जिससे ग्रामोद्योगों को बढने और विकास करने का मौका मिले ।

जैसे-जैसे क्षेत्र अपनी जरूरतो के बारे मे स्वावलम्वी होते जायँगे और विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था का विस्तार होता जायगा, वैसे-वैसे दूर के प्रवास और यातायात का बोझा अपने-आप कम होता जायगा। गॉवों को और प्रदेशो को दूर-दूर से चीजे मँगाने की या भेजने की जरूरत ही नही रहेगी। बचत की चीजों की अदला-बदली करने का प्रबन्ध सहकारी समितियॉ कर लेंगी। और इनकी प्रादेशिक परिषदे माल के विनिमय का प्रबन्ध प्रदेशो के भीतर ही भीतर इस तरह कर लेगी कि दूर-दूर से चीजे मँगाने या भेजने की जरूरत बहुत कम रह जायगी। उत्पादन अपने क्षेत्र की जरूरते पूरी करने भर के लिए मुख्यतया होगा। अतः दूर-दूर के उत्पादन और उपभोग के क्षेत्रों को जोड़ने का बहुत-सा बोझ अपने-आप कम हो जायगा। रेलवे या हवाई जहाज जैसे दूर ले जाने-लानेवाले साधनों का उपयोग बहुत सीमित हो जायगा। उदाहरणार्थ, वे या तो फलों जैसी जल्दी खराव होनेवाली चीजो के पहुँचाने के काम मे आयेंगे या शिक्षा-सम्बन्धी, सांस्कृतिक या राजनैतिक प्रवासो के काम में आयेंगे। जो चीजें जल्दी खराव नही होती, उनको साधारण दूरी के फासलों पर पहुँचाने का काम पशुओं, देहाती गाड़ियो, साइकिलो, मोटर लारियों आदि से लिया जायगा। हाँ, अगर कोई चीज बहुत जल्दी कही पहुँचानी होगी, तो इससे तेज साधनो का

उपयोग भी कर लिया जायगा। आदमियो से चलाया जानेवाला रिक्शे का उपयोग बन्द कर दिया जायगा।

यातायात और आवागमन के साधनों का विकास करने के लिए नियुक्त प्रादेशिक और राष्ट्र के अधिकारी यह ध्यान रखेगे कि यातायात के समस्त साधन काम में ले लिये जायँ। वे एक ऐसी सुसबद्ध योजना वनायेंगे कि जिसमें कहीं प्रतिस्पर्धा या साधनों का अपव्यय न हो पाये और हर क्षेत्र की जरूरत की पूर्ति हो जाय। यातायात और आवागमन के काम मे देश को स्वावलम्बी बनाने के लिए योजना का यह यत्न भी होगा कि इनके साधन—अर्थात् हवाई जहाज, इंजिन, रेलवे वैगन, ट्रक, रेल की पटरियाँ, मोटरें, जहाज, नावे इत्यादि सव देश में ही वनें। शक्ति के साधनों का भी सर्वेक्षण करके यह प्रवन्ध कर दिया जायगा कि पशु, पेट्रोल, विजली वगैरा सवका पूरा-पूरा उपयोग हो जाय और यथासम्भव हर क्षेत्र स्वावलम्बी भी रहे। आज हमारी वहुत-सी मोटरों, लारियो, मोटर साइकिलों को बाहर से आनेवाले इंधन पर निर्भर रहना पड़ता है। इसलिए परिवहन-विभाग से सम्वन्धित शोध-विभाग देश मे ही पेट्रोल की खोज करने का प्रयत्न तो करेगा ही, परन्तु वह साथ ही ऐसी मोटरें वनाने का यत्न भी करेगा, जो स्थानीय उपलव्ध इंधन से ही अथवा जापान की भाँति वेटरियों से चल सकें।

देश के जलमार्गो का भी पूरा-पूरा उपयोग कर लिया जायगा। और समुद्र किनारे के जहाजरानी की भी ऐसी योजना [illegible]ना की जायगी कि उसमें देशी नावें और मोटर लाँचें भी

स्थान पा सके। इस बात को ध्यान में रखकर छोटे-बड़े बन्दरगाहो का विकास किया जायगा। प्रादेशिक योजना-अधिकारी की यह जिम्मेवारी होगी कि वह बन्दरगाहो और परिवहन के साधनो का विकास ग्रामों के हितो मे करें।

परिवहन और सचार के साधनों मे हवाई जहाजों का भी स्थान अवश्य होगा। वे मुसाफिरों, डाक, जल्दी खराव होनेवाली चीजो, औषधियो वगैरा अत्यावश्यक चीजों के परिवहन के काम में आयेंगे।

डाक, तार और टेलीफोन की सुविधाएँ गाँवों को भी जरूर मिलनी चाहिए। हवाई जहाज, रेलवे, समुद्र के किनारे से चलनेवाले जहाज, डाक, तार, टेलीफोन वगैरा पर राज्य का अथवा सार्वजनिक सस्थानो का स्वामित्व होगा। बैल, घोड़े, ऊँट, गाड़ियाँ, लॉरियाँ इत्यादि जिनको व्यक्ति खरीदकर चला सकते है, वे व्यक्तियों के स्वामित्व में ही रहेगी। परन्तु इन पर नियन्त्रण गाँव-सभा या ऐसे ही किसी अधिकारी का होगा, जो इनके किराये की दरें निश्चित करता रहेगा। हेतु यह कि उत्पादन के साधनो की भाँति परिवहन के साधनो का भी कोई दुरुपयोग करके समाज मे असमानता पैदा न करे, उसे दूसरो के शोपण का साधन न बना ले और अर्थ-व्यवस्था मे गड़बड़ी पैदा न कर दे।

· ९ ·

मजदूर और उद्योगों का सम्बन्ध

पिछले अध्यायों मे बार-बार कहा गया है कि सर्वोदय

की अर्थ-व्यवस्था में उद्योग-प्रणाली का मुख्य भाग वह होगा, जिसके अन्दर स्वतंत्र कारीगर और सहकारी समितियाँ होंगी। अर्थात् उसमें---रोजी देनेवाला और रोजी पानेवाला---ऐसा भेद होगा ही नहीं। इससे पूँजीवाद और राज्य के समाजवाद के अन्दर की एक खास और कष्टदायक बुराई दूर हो जायगी। स्वतत्र कारीगरों के क्षेत्र में उत्पादन के साधन कारीगरों के अपने होंगे। इसलिए न तो कारीगर किसीका नौकर होगा, न उसका कोई नौकर होगा, इसलिए इस क्षेत्र में औद्योगिक सम्बन्धों की समस्या पैदा ही नहीं होगी। सहकारी क्षेत्र मे भी उत्पादन के साधन या तो काम करनेवालों के अपने होंगे या होंगे समाज के और कामगार ही इन सहकारी समितियों के द्वारा उत्पादन और बिक्री का प्रबन्ध कर लेंगे। इसलिए इस क्षेत्र में भी मालिक-मजदूर जैसी समस्या पैदा नही होगी। तीसरे क्षेत्र---सामाजिक क्षेत्र---में उद्योगों का स्वामित्व समाज अथवा शासन के हाथ मे होगा और जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यथासम्भव इनका संचालन स्थानीय समितियों या ग्राम-समितियों द्वारा सघटित सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा होगा। केन्द्रीकृत उद्योगों मे प्रायः नौकरशाही तथा शक्ति के केन्द्रित हो जाने की आशंका बराबर बनी रहती है, भले ही उन उद्योगों पर शासन अथवा समाज का स्वामित्व हो। इसलिए इस बात की सतर्कता बराबर बढ़ती जायगी कि इन उद्योगों के प्रबन्ध और प्रशासन में ऐसे तत्त्व न घुस आयें कि उससे नौकरशाही का एक वर्ग अथवा अलोकतान्त्रिक व्यवस्था-पनों की परम्परा स्थापित हो जाय। केवल सार्वजनिक

स्वामित्व होना इस बात का प्रमाण नही है कि शक्ति का केन्द्रीकरण अथवा नौकरशाही की परम्परा रुक जायगी। अत इसके सचालन की विधि ऐसी होगी कि उसमे लोक-तान्त्रिक परम्परा का ही प्राधान्य रहे। इसका फल यह होगा कि मालिक-मजदूर-सम्बन्ध नाम की कोई चीज न रहेगी। और चूँकि कामगार ही उद्योग का प्रबन्ध करेगे, वहाँ काम करने की सब प्रकार की—आदर्श—सुविधाएँ होंगी। वे खयाल रखेंगे कि उद्योगों मे कही ऐसी परिस्थितियाँ निर्माण न हो, जिनका असर कामगारो के शरीर या मन पर बुरा पड़े। काम के घंटे मुकर्रर होगे और प्रबन्ध-समिति—जिसके सदस्य कामगार ही खुद होगे—कामगारो के मनोरजन और आरोग्य-सम्बन्धी देखभाल का पूरा प्रबन्ध रखेगी। कारखानों मे तैयार होनेवाली चीजो की कीमतो का निर्णय कुछ निश्चित सिद्धान्तो के अनुसार होगा, जिनका उल्लेख पिछले एक अध्याय में आ चुका है। इसके अलावा उद्योग के अन्दर किस महकमे मे किन्हे-किन्हें क्या-क्या पारिश्रमिक दिया जाय, इसका निर्णय भी खुद कामगार ही अपने प्रतिनिधियों के द्वारा करेंगे। असल मे यहाँ पारिश्रमिक—मजदूरी—ही गलत शब्द है। क्योंकि कोई मालिक ही किसी नौकर या मजदूर को इस तरह पारिश्रमिक दिया करता है और वह स्थिति तो रहेगी ही नही।

मतलब यह कि समाज अथवा शासन द्वारा चालित बड़े उद्योग-क्षेत्रों में भी औद्योगिक झगड़े जैसी कोई चीज नही रहेगी। किसी भी उद्योग के कामगारों को, चाहे वह उद्योग

सहकारी क्षेत्र मे हो या बड़े सामाजिक उद्योगों के क्षेत्र में---यह अधिकार होगा कि अपनी मजदूर संस्थाएँ बना सकें। निश्चय ही ये सभाएँ आज की उद्योग-क्षेत्रों में चल रही मजदूर-सभाओ से एकदम भिन्न प्रकार की होंगी। आज तो उद्योग का एक अंग दूसरे अग के खिलाफ अपने अधिकारों को मंजूर करवाने के लिए सगठन करता है अथवा अधिकारो की रक्षा करने के लिए झगड़ता है, किन्तु तब तो इस तरह एक अग दूसरे का विरोधी रहेगा ही नही। वे तो ऐसे कामगारो के संगठन होंगे, जो खुद ही मालिक और खुद ही कामगार होंगे। अतः उन्हें न किन्हीं अधिकारो की किसीसे मॉग करनी होगी और न कोई अधिक हिस्सा मिलने के लिए झगड़ना होगा। वे तो ऐसे सगठन होंगे, जिनके द्वारा कामगार उद्योग, समाज और अपने प्रति कर्तव्यों का पालन करेंगे।

रोजी वगैरा की निश्चिन्तता के लिए पिछले अध्याय में बताये अनुसार बीमा-योजनाएँ होंगी और समाज की तरफ से हर मनुष्य को पूरा काम देने का आश्वासन रहेगा ही। शहरो और बड़े-बड़े उद्योग-केन्द्रो मे रहनेवाले कामगारो के लिए साफ-सुथरे मकान और स्वास्थ्यकर बस्तिया बना दी जायँगी।

यह भी पहले कहा जा चुका है कि आजकल जिसे मजदूरी कहते है, ऐसी कोई चीज सर्वोदय की अर्थ-व्यवस्था मे नही होगी। क्योंकि वह ऐसा समाज होगा, जिसमें हर मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार काम करेगा और जरूरत के लायक लेगा। जो कुछ असमानता रहेगी, वह केवल तादाद मे ही। सब प्रकार के काम का मूल्य—चाहे वह शारीरिक हो या बौद्धिक—समान होगा

और भिन्न-भिन्न पेशों की आय मे भी कोई अन्तर न होगा।

परन्तु संक्रमण-काल में विषमताओ को क्रमशः मिटाने के लिए शासन व समाज को कुछ नैतिक ढग की जबर्दस्ती—मृत्यु-कर वगैरा का सहारा लेकर करनी पडेगी। अन्त में विषमता का अनुपात १ : १० से किसी प्रकार अधिक नही होगा। इस प्रकार सबसे पहले तो यह प्रयत्न होगा कि किसी भी परिवार की मासिक आय १००) से कम और अधिक-से-अधिक आय १०००) मासिक से ऊपर न होगी।

इसके अलावा शासन, सार्वजनिक सस्थान अथवा गॉव-सभाएँ कामगारों के मनोरजन या स्वास्थ्य-लाभ के लिए क्रीड़ागार या विश्राम-स्थान बनायेंगे और जिन कामगारो को ऐसे काम करने पड़े, जिनमे शरीर या मस्तिष्क को हानि पहुँचने का खतरा हो अथवा जहॉ अत्यधिक परिश्रम करना पड़े, उनके स्वास्थ्य-लाभ और मन.स्वास्थ्य के लिए विशेष प्रकार की सुख-सुविधाओ का भी प्रबन्ध रहेगा।

: १० :

शिक्षा

अन्य क्षेत्रो की भॉति शिक्षा-क्षेत्र मे भी उसके उद्देश्य, प्रणाली और पाठ्य-विषय आदि मे परिवर्तन की आवश्यकता है। वल्कि ऐसा कहें कि अन्य क्षेत्रो की अपेक्षा इस क्षेत्र में तो और भी आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। शिक्षा का यह उद्देश्य नही होगा कि वह ऐसा विशिष्ट वर्ग पैदा करे, जो

उत्पादक शारीरिक श्रम को हेय समझे और स्वार्थ-भाव से प्रेरित होकर अपनी शिक्षा और बुद्धि का उपयोग कर निर्धनो और आवश्यकताग्रस्त लोगो के बल पर मोटा हो। बल्कि यह होगा कि लोग जीवन की कला सीखे—उत्पादकों के समाज में रहना सीखें, श्रम के गौरव और आवश्यकता को समझे, अपने आसपास के समाज का खयाल रखने और उसकी माँगो को समझने लगे, अपने और समाज के प्रति अपने कर्तव्यो को समझकर पूरा करने को तत्पर होना सीखे और अपनी बुद्धि तथा शक्ति का विकास करके सबको ज्ञान देने तथा समाज का कल्याण करने में उनका उपयोग करना सीखें। यह शिक्षा जीवन के लिए और प्रत्यक्ष जीवन के द्वारा होगी। उसे समाज की जरूरतों के साथ जोड़ दिया जायगा और किसी समाजोपयोगी उत्पादन-क्रिया के द्वारा वह दी जायगी। शिक्षण की प्रारम्भिक अवस्था मे, विशेषकर वुनियादी स्तर पर, इस बात का प्रयत्न किया जायगा कि शिक्षार्थी आत्म-निर्भर हो और बाद की अवस्था में, विशेषकर ऊँची कक्षाओं में, शिक्षा-व्यय छात्र के उत्पादक श्रम द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न किया जायगा, यह भी प्रयत्न किया जायगा कि छात्र यथासम्भव शिक्षा-व्यय के मामले में आत्मनिर्भर हो जाय। प्रत्येक छात्र को अपने वर्ग के लिए निर्धारित वुनियादी दस्तकारी तथा वुनियादी शिक्षा के अन्य विषयों में तदनुरूप प्रवीणता प्राप्त करनी होगी। दस्तकारी में उत्तरोत्तर बढ़ती हुई इस प्रवीणता के फलस्वरूप छात्र अधिकाधिक इस योग्य होता जायगा कि वह आत्मनिर्भर हो तथा शालेय समाज (छात्रो-

अध्यापको सहित) उसके इस श्रम से प्राय. आत्मनिर्भर हो जाय। यदि छात्र के विद्यालय में रहने की सम्पूर्ण अवधि की दृष्टि से विचार करे, तो यह हिसाब ठीक ही बैठेगा।

उत्तर-बुनियादी और उच्च शिक्षा भी इसी प्रकार किसी समाजोपयोगी उत्पादक कार्य या दस्तकारी के द्वारा होनी चाहिए। प्राथमिक वर्गो मे शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो और उत्तर-बुनियादी तथा उच्च वर्गो में प्रादेशिक अथवा राष्ट्रभाषा।

समाज का यह कर्तव्य होगा कि तमाम बच्चो की बुनियादी शिक्षा का और जो प्राथमिक शिक्षा पूरी करके आगे बढना चाहे, उनके लिए उच्च तथा औद्योगिक शिक्षा का प्रबन्ध करे। गॉव के प्रत्येक बच्चे को और बच्ची को भी नयी तालीम द्वारा या अन्य प्रकार से किसी दस्तकारी की प्रशिक्षा लेकर उसमे तथा उससे समन्वित अन्य विषयो में भी आठ वर्ष के बुनियादी प्रशिक्षण मे जितनी योग्यता प्राप्त होती है, वह प्राप्त करनी होगी।

शिक्षा पर राज्य का नियन्त्रण न होगा। शिक्षक और शिक्षा-सस्थाएँ पाठशालाएँ और उच्च शिक्षण की सस्थाएँ चलायेगे और शिक्षण के प्रयोग भी करते रहेगे। जहॉ पाठशालाएँ या शिक्षा-सस्थाएँ नही होंगी या कम होगी, वहॉ शिक्षा सवके लिए उपलव्ध करने के हेतु ग्राम-सभाएँ या राज्य पाठशालाएँ खोलेगे या उनका खर्च देंगे। परन्तु शिक्षा-पद्धति पर उनका नियन्त्रण न होगा। शिक्षा की पद्धति, पाठ्यक्रम वगैरा का निश्चय शिक्षको का एक मण्डल करेगा—शिक्षण-सस्थाओं और

व्यक्तियों को शिक्षण के प्रयोग करने की स्वतंत्रता रहेगी। शासन और समाज उनके इस काम के लिए अर्थ का प्रबन्ध कर देंगे, परन्तु उसमें हस्तक्षेप करने का यत्न नही करेंगे।

हर गाँव मे एक बाल-मंदिर (पूर्व-बुनियादी शाला) और बुनियादी शिक्षा की एक या अधिक शालाएँ होंगी। परन्तु उनकी पढाई में समानता होगी। इसके अलावा उत्तर-बुनियादी या उच्च शिक्षण की संस्थाएँ भी होंगी। कहीं-कही किसी दस्तकारी की विशेष प्रशिक्षा देनेवाली संस्था भी होगी। ये ऐसी जगह रखी जायँगी कि किसी भी गाँव से चार-पाँच मील से अधिक दूर नहीं पड़ेंगी। इन शालाओं का प्रबन्ध शिक्षा-समितियों के हाथों में होगा और इनके खर्च की पूर्ति करने की जिम्मेवारी उन गाँवों की होगी, जो इनसे लाभ उठायेंगे।

उच्च और विश्वविद्यालय की शिक्षा का भी पूरी तरह पुनस्संगठन किया जायगा। उच्च शिक्षा भी किसी समाजोपयोगी उत्पादक क्रिया के साथ जुडी होगी। आरोग्य और चिकित्सा-विज्ञान, इंजीनियरिंग तथा ऐसे ही अन्य विषयो की शिक्षा का भी प्रबन्ध होगा। विज्ञान की उच्च शिक्षा का प्रबन्ध विश्व-विद्यालय करेंगे। वे बुनियादी प्रकार के, औद्योगिक और यान्त्रिक शोध की संस्थाएँ भी चलायेंगे। जैसा कि पिछले एक अध्याय में कहा गया है, उद्योगों की भी अपनी शोध-संस्थाएँ होंगी ही। इसके अलावा राज्यों और राष्ट्र की भी शोध-परिषदें होंगी, जो इन विभिन्न शालाओं में चल रहे शोधो का समन्वय करती रहेंगी और सारे देश में चल रहे शोधों की इन सबको खबरें देती रहेंगी। जहाँ जैसी जरूरत होगी, राज्य-शासन अपने प्रदेश

के विश्वविद्यालयों, शोध-संस्थाओ और उच्च शिक्षा-संस्थाओं की आर्थिक मदद करता रहेगा। केन्द्रीय शासन भी अपनी विज्ञान-शालाएँ स्थापित कर सकता है और राज्यों की शोध-संस्थाओ और उच्च शिक्षा-संस्थाओं की मदद करता रहेगा।

शिक्षा के क्षेत्र में ऐसी क्रान्ति करने की इच्छा रखनेवाले शिक्षकों और विद्यार्थियों को खोजकर शिक्षा-संस्थाओं को तथा राज्यो की सरकारों को उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी होगी।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में क्रान्ति करने के लिए कई कदम तुरन्त उठाने की जरूरत है। शिक्षा की पद्धतियों और पाठ्य-पुस्तकों को एकदम बदल देना होगा। एक बार यह निश्चय हो जाय कि शासकीय नौकरियो और व्यापारी पीढियों के लिए विश्वविद्यालय की उपाधियाँ अनिवार्य नही मानी जायँगी, तो आज की उच्च शिक्षा मे इस सक्रमण-काल मे भी काफी सुधार किया जा सकता है। शिक्षको को प्रशिक्षित करनेवाली सस्थाओ की संख्या बढानी होगी। खुद शिक्षक के धन्धे मे भी बहुत सुधार की जरूरत है। जिन लोगो ने क्रियाशील जीवन को छोडकर अपने धन्धे या नौकरियो से अवकाश प्राप्त कर लिया है और जो नौजवानो को अपने अनुभव और मधुरता का लाभ देने की इच्छा रखते है, उनकी सेवाओ का लाभ भी अवश्य उठाना चाहिए। यह बात माननी होगी कि प्राय: शिक्षिकाएँ प्राथमिक वर्गो के बच्चो की समस्याओ को अधिक अच्छी तरह समझ और सुलझा सकती है। इसलिए शिक्षण के काम के लिए जितनी बहनो की सेवाएँ उपलब्ध की जा सकें, करनी चाहिए।

इस सबके अलावा गाँव-सभाओ और राज्य सरकारों को प्रौढ़-शिक्षा और समाज-शिक्षा की मुट्ठी में चलाने का काम हाथ मे लेने की जरूरत है। यह कार्य 'एक घण्टे की पाठशाला' एव ग्राम-विश्वविद्यालयों के माध्यम से भलीभाँति हो सकता है। प्रौढ़-शिक्षा केवल लिखने-पढने या हिसाब-किताब में ही समाप्त नही हो जाती। हमे प्रौढ़ो को नये समाज के समझदार नागरिक बनाना है। क्योकि यह पहले ही बता दिया जा चुका है कि समाज का राजनैतिक और आर्थिक ढाँचा बदल देनेभर से सर्वोदय का लक्ष्य सिद्ध नही हो जायगा। इसके लिए तो धीरज के साथ और अनवरत रूप से शिक्षा द्वारा और समझा-बुझाकर प्रत्येक मनुष्य का सारा दृष्टिकोण बदलना होगा, क्योंकि यही नये समाज के आधार होंगे। ◆◆◆

: ११ :

स्वास्थ्य और सफाई

केवल आर्थिक और राजनैतिक सस्थाओ का कायाकल्प कर देनेभर से सर्वोदय-समाज की स्थापना नही हो जायगी। न्याय और समानता के आधार पर अर्थ-व्यवस्था और राजनैतिक रचना स्थापित कर देने के अलावा सर्वोदय में और भी बहुत-सी बातें होती है। वह तो सत्य, प्रेम और अहिंसा के सनातन सिद्धान्तों के आधार पर व्यक्ति और समाज के जीवन को जिस प्रकार ढाला जाता है, उस जीवन-पद्धति का नाम है। सर्वोदय जिस स्वराज्य की कल्पना कर रहा है, वह तो आत्म-संयम के आधार

पर ही स्थापित हो सकता है। इसलिए सर्वोदय-समाज के अन्दर रहनेवाले लोगों की आदते और रहन-सहन हमारे आज के समाज की अपेक्षा बिलकुल भिन्न होगी। आज के इस युग में यत्र मानव-जीवन पर बुरी तरह हावी हो गये है और इनके कारण मनुष्य शरीर और मन से अत्यधिक परेशान रहता है। सर्वोदय-समाज की रहन-सहन और आदते मनुष्य के व्यक्तित्व को ऐसा बना देगी कि वह इन परेशानियों से बच जायगा। जब मनुष्य इन परेशानियों से बच जायगा, जब वह आजीविका शान्ति और निश्चिन्तता के साथ प्राप्त कर सकेगा, जब शरीर और दिमाग के लिए हानिकर परिस्थितियों मे काम करने से उसे छुट्टी मिल जायगी, जब पोषक और शरीर के लिए आवश्यक सभी रसों से युक्त भोजन उसे मिलने लगेगा, जब गाँव-सभाएँ और राज्य समाज के लिए स्वास्थ्यकर परिस्थितियाँ निर्माण कर देंगे, तब भुखमरी, सारहीन खूराक, गंदगी, मानसिक परेशानियाँ और बिगड़े हुए तौलवाले जीवन में पैदा होनेवाली बीमारियाँ अपने-आप कम हो जायँगी। फिर भी ऐसी अनेक बीमारियाँ रहेंगी ही, जिनके रोकने और मिटाने की जरूरत रहेगी। सर्वोदय यह ठीक नही मानता कि अपने स्वास्थ्य की परवाह न करके लोग मनमाना भोग-विलास करते रहे। क्योकि वह जानता है कि इस तरह के जीवन से स्वास्थ्य को जो हानि पहुँचती है, उससे दवाएँ मनुष्य को बचा नही सकती।

फिर भी बीमारियो को रोकने और दूर करने के सब उपाय किये जायँगे। गाँव-सभाएँ समाज को बीमारियो के कारण बतायेंगी और उनसे बचने के उपाय भी समझायेंगी।

समाज और शासन इस बात का पूरा प्रयत्न करेंगे कि औषधोपचार सबके लिए सुलभ हो जाय। दवाखाने, अस्पताल और स्वास्थ्यसम्बन्धी सलाह देनेवाले केन्द्र पर्याप्त संख्या में गाँवों में तथा शहरी क्षेत्रों में स्थापित कर दिये जायेंगे और प्राकृतिक उपचार, आयुर्वेद, होमियोपैथी और एलोपैथी, सब पद्धतियों का उपयोग किया जायगा और यह प्रबन्ध किया जायगा कि इलाज सबके लिए सुलभ हो जाय। औषधि-विज्ञान और शल्य-क्रिया के प्रशिक्षण की ओर सब प्रकार की चिकित्सा-पद्धतियों में शोध की सुविधाएं भी कर दी जायँगी। इस प्रकार जनता जिस प्रकार की चिकित्सा-पद्धति से लाभ उठाना चाहेगी, लाभ उठा सकेगी। परन्तु समाज तो सबको यही शिक्षण देगा कि सर्वोपरि पद्धति तो प्राकृतिक उपचार ही है। और यह कि अन्धाधुन्ध औषधि-सेवन मनुष्य को ऐसी शक्ति प्रदान नहीं कर सकती कि वह मनमाना अतिरेक करता रहे।

डॉक्टरों को यह इजाजत नहीं होगी कि वे अपने पेशे को धन कमाने का साधन बना लें। उनको समाज की तरफ से वेतन मिलेगा। गाँव-सभाएँ और ऊपर की संस्थाएँ स्वास्थ्य-बीमे की योजनाएं बनाकर समाज के आरोग्य का प्रबन्ध करेंगी।

औषधियों के निर्माण का काम शासन या समाज का होगा। बहुत-सी औषधियाँ स्थानीय वनस्पतियों से ही बना ली जायँगी। इनका निर्माण गाँव-सभाएँ इस शास्त्र के विशेषज्ञों की देखभाल में करायेंगी। प्रत्येक गाँव में वनौषधियों का एक बाग होगा। जो औषधियाँ या शल्यक्रिया के उपकरण गाँवों

मे नही बनाये जा सकेंगे, उनका निर्माण राज्य करेगा। समाज कुष्ठ, क्षय और नासूर जैसे महारोगों से पीडितो के इलाज का विशेष प्रबन्ध पृथक् दवाखाने बनाकर करेगा। इसके अलावा लोगों के लिए विश्रामघर, स्वास्थ्य-लाभ के स्थान वगैरा प्रादेशिक अधिकारी बनायेंगे ही।

स्वास्थ्य के लिए हानिकर जीवन से लोगों को बचाने का हर प्रयत्न किया जायगा। मद्य मात्र का निर्माण और बेचना कानून से मना होगा। केवल औषधि के तौर पर वह मिल सकेगा। मद्यनिषेध राज्य की मान्य नीति होगी। अफीम, शराब जैसी नशीली चीजे जनता के लिए उपलब्ध न होगी। वे केवल डॉक्टरो को ही बेची जा सकेगी, जो इस बात का पूरा ध्यान रखेंगे कि इनका उपयोग केवल औषधि के रूप मे ही किया जाय। जब हर आदमी के लिए पोषक खूराके आवश्यक मात्रा मे उपलब्ध होगी, उसकी रहन-सहन अच्छी होगी, जब काम करने की जगह और पद्धति स्वास्थ्य के लिए हानिकर नही होगी, जब काम कष्टदायक नही,वल्कि सृजनात्मक और आनन्द-दायक होगा, जब फुरसत के समय का उपयोग मनुष्य मनो-विनोद और सास्कृतिक प्रवृत्तियो मे कर सकेगा, तब अपने-आपको पागल बनाने या बेहोश करनेवाले नशों का सेवन करने की मनुष्य को इच्छा ही नही रहेगी। शारीरिक स्वच्छता और घर-आँगन की सफाई आरोग्य के लिए परम आवश्यक है। इसका ज्ञान ग्राम-सभा जनता को देगी और इनकी तरफ पूरा ध्यान देगी। हर गॉव मे पीने के लिए स्वच्छ पानी का प्रबन्ध होगा। गॉवो मे गन्दे पानी के गढे, खुली नालियाँ या

ऐसी कोई जगह नही होगी, जहाँ मच्छड़, मक्खियाँ या ऐसे ही बीमारी फैलानेवाले कीड़े पैदा हों।

लोगों को समझाया जायगा कि वे खाई की या गढे की टट्टियों का ही उपयोग करे। ये सस्ती होती है और आसानी से वनायी जा सकती है। इनके उपयोग से बीमारियाँ नही फैलती। पेशाब और पाखाने का उपयोग खाद के लिए किया जायगा। शहरो मे इनके बनाने की सुविधा नही होती। वहाँ फ्लश पद्धति की टट्टियाँ होगी। और कूड़े-कचरे से गैस बनाने का प्रवन्ध होगा, जो रोशनी के काम में आ सकेगा। पाखाना भी इस काम मे लाया जा सकता है। इस प्रकार गाँवों और शहरों में भी भंगियो की जरूरत नही होगी और सैकड़ो वर्ष से चले आये एक अन्याय का अन्त हो जायगा।

हर गाँव में प्रसूतिघर होगे, जहाँ प्रसूति में मदद के लिए प्रशिक्षित दाइयाँ होंगी। प्रसूति से पहले और प्रसूति के वाद मे जच्चा की पूरी देखभाल और परिचर्या का प्रवन्ध होगा। स्त्रियों और पुरुषो को भी यह शिक्षा दी जायगी कि व्यक्ति और समाज के शारीरिक तथा नैतिक स्वास्थ्य के लिए संयम वहुत आवश्यक है और असंयम मे मनुष्य का सर्वनाश। यही नही, वह समाज की नैतिक वुनियाद को नष्ट कर देता है। संयम के वगैर नीति, संस्कार और ज्ञान सव वेकार वन जाते है। ये टिक ही नही सकते। असल में सयम समाज की आधारशिला है।

समाज मे अगर कहीं संयम का स्थान असंयम ले ले, तो मुसीवतों का अन्त ही नही। उस समाज के व्यक्ति चरित्र-भ्रष्ट होगे। वह वीमारियों का घर होगा। आवादी और वाल-

मृत्यु बढेगी और बच्चों की अच्छी तरह सँभाल नही हो पायेगी। सयम ही एक ऐसी वस्तु है, जिससे पति-पत्नी के बीच प्रेम और आदर बढता है और परिवार तथा समाज का वातावरण नैतिक वना रहता है। स्त्रियों को बार-वार की प्रसूति के कष्ट से और बच्चों को लापरवाही से बचाना बहुत आवश्यक है। क्योंकि इससे स्त्रियों और बच्चो, दोनों के स्वास्थ्य को बड़ी हानि पहुँचती है। यह सब संयम से ही हो सकता है। इसलिए समाज अपने हित के लिए सयम का वातावरण बनायेगा। इसका असर साहित्य, सिनेमा तथा उन तमाम चीजों पर भी अपने-आप पड़ेगा, जिनका समाज पर प्रभाव पड़ता है। ◆◆◆

: १२ :

प्रतिरक्षा

आज की परिस्थितियों में प्रतिरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं के कारण अधिकांश राष्ट्रों के बजट में इस मद पर ही सबसे अधिक रकम दिखाई जाती है। यहाँ तक कि तटस्थ राष्ट्रों को भी, जिनका आतंक युद्ध से किसी प्रकार का सम्बन्ध नही है, विवश होकर अपने राजस्व का अनुपातत. अधिक भाग अपनी सैन्य शक्ति को यथावत् कायम रखने एवं उसे बढ़ाने मे लगाना पड़ता है। प्राय. सभी देशो से उनके मैत्रीपूर्ण सम्वन्ध रहते है और किसी भी राष्ट्र की ओर से उन्हे आक्रमण की आशंका नही रहती। फिर भी देशी तथा विदेशी संकट से त्राण पाने के लिए उनके पास भी सशक्त सैन्यदल वनाये रखने के सिवा दूसरा चारा नही रह जाता।

शस्त्रास्त्रों की संहारक शक्ति में जो अत्यधिक वृद्धि हुई है, उससे युद्धों के स्वरूप, कौशल और परिणाम में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गये हैं। आणविक और स्वचालित अस्त्रों के इस युग में आक्रमण और प्रतिरक्षा के परम्परागत ढंग आज अपर्याप्त एवं बेकार-से हो गये हैं। युद्धों के निर्णायक अस्त्र आज इतने व्यय-साध्य हो गये है कि आज कुछ ही राष्ट्रों में यह सामर्थ्य है कि वे उनकी सहायता से अपनी सेना सुसज्ज कर सकें और इस पर भी वह सेना सफलतापूर्वक देश की प्रतिरक्षा कर सकेगी, इसमें सन्देह ही है। यही कारण है कि बहुत-से राष्ट्र मिलकर सामूहिक सुरक्षा की दृष्टि से क्षेत्रीय सैनिक-संघटनों का सहारा ले रहे है। बड़े-बड़े सबल और सशक्त राष्ट्र भी, जिनके पास इतने साधन हैं कि वे आज के युद्धों का सामना कर सकने योग्य सैन्य-शक्ति का संघटन कर लें, अपने को इस योग्य नही समझते कि युद्ध होने पर वे विजय प्राप्त कर ही लेगे या उनके प्रतिरक्षा-साधन अभेद्य है। शस्त्रास्त्र-निर्माण की होड़ के इस जमाने मे कोई भी राष्ट्र तव तक सन्तोप-लाभ नही कर पाता, जव तक कि वह भी निर्माण के इस कार्य मे अपने को लगा नही लेता। आणविक अस्त्रों की सर्वसंहारकारिणी क्षमता तथा युद्ध मे विजय-लाभ कर पाने की अनिश्चित अवस्था एवं विजयी होने पर भी वहुत कुछ हाथ न लग पाने के नैराश्यजन्य भाव ने सभी राष्ट्रों के मन में युद्ध और उसके परिणामों के प्रति एक प्रकार का भय पैदा कर दिया है। कोई भी ऐसे युद्ध में आज उतरने को तैयार नहीं है, जिसका परिणाम सर्वथा अनिश्चित हो। सभी राष्ट्र युद्ध से ऊबे-से है और इसीलिए सभी निरस्त्रीकरण के लिए

लालायित है। लेकिन कोई भी राष्ट्र इस कार्य में अगुआ नहीं वनना चाहता। सभी यह कहते हैं कि यदि अन्य राष्ट्र सैन्य-शक्ति घटायें, तो उसी अनुपात मे हम भी कमी कर देंगे। यह दुश्चक्र इतना व्यापक है कि वैसे तो सभी राष्ट्र शान्ति की कामना करते है, किन्तु आकस्मिक स्थिति के लिए सभी तैयारी भी करते जाते है।

सर्वोदय को हिसा मे कोई निष्ठा नही है और इसीलिए युद्ध के प्रति भी कोई आस्था नही है। यह किसी भी रूप में हिसा का विरोधी है, चाहे वह व्यक्तियों के जीवन मे हो या राष्ट्रों के। सभी प्रकार के विवादो और समस्याओ के समाधान के लिए नैतिक आधार पर यह समझाने-बुझाने या अन्तत. सत्याग्रह के मार्ग का अवलम्बन ही उचित समझता है। यह इस बात को बिलकुल नही मानता कि युद्धो से समस्याओं का समाधान हो सकता है, अतः यह चाहता है कि सभी राष्ट्र शान्ति का रास्ता अख्तियार करे, जिससे विवादग्रस्त प्रश्न भलीभाँति सुलझाये जा सकें। जिस शान्ति की यह कल्पना करता है, वह सैन्य-शक्ति के भरोसे प्राप्त की गयी शान्ति नही है, जिसके चलते विरोधी राष्ट्र भय के कारण शान्त बने रहने को विवश होते हैं। इसका विश्वास ही इस बात में नही है कि परस्पर एक-दूसरे को भयाक्रान्त करके उन्हे आक्रमण से विरत किया जा सकता है। इसकी तो मान्यता यह है कि युद्ध तभी समाप्त किया जा सकता है, जब कि सब राष्ट्र शुद्ध भाव से यह मान ले कि अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान का तरीका युद्ध नहीं है। यदि युद्ध का अन्त करना है, तो सभी राष्ट्रों को निरस्त्रीकरण की विधि अपनानी होगी, किन्तु यदि प्रत्येक

राष्ट्र यह सोचने लगें कि निरस्त्रीकरण तभी सम्भव है, जब कि सब राष्ट्र इसके लिए तैयार हों, तो निरस्त्रीकरण कभी न हो पायेगा। किसी-न-किसीको तो अगुआ बनना ही होगा, जिसमें दूसरों के लिए भी रास्ता खुले। निरस्त्रीकरण के मामले में इस समय जो गतिरोध की अवस्था है, वह तब तक दूर नहीं हो सकती, जब तक कि कोई एक राष्ट्र साहस करके आगे नहीं बढ़ता और दूसरो के लिए उदाहरण नही उपस्थित करता। अहिसा में विश्वास करने-वाला तब तक चुप नही बैठा रहता, जब तक कि उसका प्रतिपक्षी भी अहिसा का भाव अपना नहीं लेता। प्रतिपक्षी मे हिंसा का भाव रहते हुए भी वह अपनी अहिंसक शक्ति से काम लेता है। यदि मानव-समाज को युद्धों से बचाना है, तो राष्ट्रों को भी यही तरीका अपनाना होगा। सत्याग्रह के सब ढंग तभी कारगर हो सकते है, जब कि एकाकी होने पर भी सत्याग्रही दृढ़ निश्चय और निष्ठापूर्वक सत्य और अहिसा को अपना ले। सर्वोदय के प्रति निष्ठा और विश्वास रखनेवालों को भी अपना कर्तव्य समझकर अपने-अपने राष्ट्रजनों को यह बात बतानी होगी कि युद्ध दूर करने का तरीका यही है कि वे लोग निरस्त्रीकरण की ओर बढ़ने के लिए अपूर्व साहस दिखायें।

(१) शान्तिविषयक भारतीयों की निष्ठा परम्परया ऐतिहासिक और अखण्ड हैं। इस परम्परा की नवीनतम अभि-व्यक्ति स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के प्रसंग में अहिसात्मक आन्दोलन के रूप में गांधीजी द्वारा प्रेरित और विकसित हुई। यह आन्दोलन राष्ट्रीय जीवन मे शान्ति-मार्गसम्बन्धी सम्भावनाओं को व्यक्त करने में ही सफल नहीं हुआ, वरन् इस निष्ठा को व्यावहारिक

रूप देने के कौशल को विकसित करने मे भी सफल हुआ। भारत का यह कर्तव्य है कि निष्ठा की यह बात और उसे व्यावहारिक रूप देने का यह कौशल वह संसारभर मे फैलाये और एकांगी ही सही, निरस्त्रीकरण का कार्यक्रम अपनाने की नीति पर चले। जितना ही शीघ्र भारत इस काम मे हाथ लगायेगा, उतना ही उसके लिए तथा संसार के लिए लाभ की बात होगी।

(२) राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय समाज मे आज जो संघर्षमूलक प्रवृत्तियाँ व्याप्त है, उनका कारण जीवनविषयक दोषपूर्ण मान्यताएँ है, जिनका विवेचन प्रथम भाग में किया जा चुका है। अत. निरस्त्रीकरण की बात सफल बनाने के लिए तथा युद्ध के निवारण के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि अन्तर्राष्ट्रीय जीवन-प्रणाली के आधार मे क्रान्तिकारी परिवर्तन किये जायँ। आज प्रत्येक राष्ट्र अपने हितों के सम्बन्ध में इस संकीर्ण बुद्धि से विचार करता है कि दूसरे राष्ट्रों के हितों पर उसका ध्यान ही नही जाता। सर्वोदय की दृष्टि यह है कि व्यक्ति-व्यक्ति अथवा राष्ट्र-राष्ट्र के हितों मे संघर्ष के लिए कोई स्थान ही नही है। जिस प्रकार शान्ति और स्वतन्त्रता अविभाज्य है, वैसे ही सबके हित भी अविभाज्य है। हितो मे सघर्ष की वात ही नही उठती। आज जिसे राष्ट्रीय हित समझा जाता है, वही कल दोष हो सकता है, यदि उसके चलते दूसरे राष्ट्रों के हितो से सघर्ष की नौबत आये। इसलिए यह आवश्यक है कि संसार के लोग इस वात का विचार करें कि आज विभिन्न राष्ट्रों के जो हित परस्पर टकराते दिखाई देते है, उनसे अन्तत: किसी भी राष्ट्र का वास्तविक हित नही हो सकता। संसार में शान्ति तभी हो

सकती है, जब विश्व-समाज के हित को आज के संकीर्ण राष्ट्रीय हित के ऊपर समझा जाय। अतः विश्व-शान्ति के लिए आवश्यक है कि सबके हितों को समन्वित किया जाय तथा अन्तर्राष्ट्रीय जीवन-पद्धति का निर्माण किया जाय, जिसमें विभिन्न राष्ट्र पृथक्-पृथक् रूप से अपने ही हितों की बात न सोचें, वरन् दूसरों के हितों पर भी उनका ध्यान रहे और परस्पर एक-दूसरे का हित करने के लिए त्याग करने को भी तत्पर रहे।

पिछले अध्यायों में जिस ढंग के नियोजन की रूपरेखा खीची गयी है, उसके कार्यान्वित होने पर इस दिशा में निर्णायक कदम तो अपने-आप उठ चुके रहेंगे। अहिसक आधार पर जब आर्थिक और सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना हो जायगी, तो राष्ट्र अहिसा की अद्‌भुत् शक्ति से स्वयमेव परिचित हो जायगा और तव वह अपनी प्रतिरक्षा के हेतु इसी शक्ति का उपयोग करने के लिए तैयार भी रहेगा। गरीवी, शोषण और विषमता दूर हो जाने पर राष्ट्र मे एकता का प्रबल भाव उत्पन्न हो जायगा और तव अहिंसात्मक प्रणाली से आत्मरक्षा की व्यवस्था करना सुगम हो सकेगा। अहिसक समाज में रहनेवाले व्यक्तियों का जीवन ही इस ढंग का होगा कि उन्हें अहिसात्मक प्रतिरक्षा की विधि अपने-आप ज्ञात हो जायगी। सर्वोदय समाज की प्रवृत्ति ही आक्रामक या विस्तारवादी नही हो सकती। आक्रमण के लिए यह दूसरों को किसी प्रकार की उत्तेजना भी नही प्रदान करेगा, क्योंकि सभी राष्ट्रो से इसके वास्तविक मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहेंगे। और इस प्रकार युद्ध का भय समाप्त हो चलेगा तथा निर्भयता और आत्मनिर्भरता का भाव उत्पन्न हो जायगा।

यहाँ यह तर्क किया जा सकता है कि अभी तो ऐसे समाज की स्थापना आगे चलकर कभी होगी और राष्ट्रों को इस बीच अपनी प्रतिरक्षा की तैयारी करनी ही पडेगी। किन्तु हम शक्तिगुटों में सम्मिलित होने से अपने को बचायेंगे और ऐसी नीति अपनायेंगे कि जिससे वास्तविक और सक्रिय मैत्री की भावना दृढ हो। सर्वत्र लोग हिंसा से ऊबे हुए-से हैं; किन्तु राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का समाधान हिंसा के माध्यम से करने की नीति में उनका विश्वास अब भी बना हुआ है। वे अहिंसात्मक प्रतिरक्षा के प्रति आज भी शंकाशील हैं। अहिंसा की शक्ति में विश्वास रखनेवालों को ऐसे वातावरण की सृष्टि करने की कोशिश करनी होगी, जिससे लोगों मे अहिंसात्मक प्रतिरक्षा का भाव उत्पन्न हो। लेकिन यह शंकाशीलता एक दिन में दूर नही हो सकती। जब तक लोग हिंसा और युद्ध को अनिवार्यत: आवश्यक समझते रहेंगे, तब तक सरकारों से यह आशा नही की जा सकती कि वे अपनी सेनाएँ विघटित कर दें या सशस्त्र प्रतिरक्षा के भाव से विरत हो जायँ। जब तक लोगों में व्यापक रूप से अहिंसात्मक प्रतिरक्षा की शक्ति, सामर्थ्य और महत्ता के प्रति दृढ़ विचार नही फैल जाता, तब तक सरकारे यह कार्य नही कर सकती। अत: वे निश्चय ही उन्ही तरीकों और अस्त्रो से देश की रक्षा की व्यवस्था करती रहेंगी, जिनके प्रति उनकी आस्था है।

अहिंसा के प्रति निष्ठा रखनेवाले सक्रिय अहिंसात्मक प्रतिरोध का सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत कर दिखा सकते हैं कि सैनिक-शक्ति द्वारा किये गये आक्रमण का मुकाबला किस प्रकार सत्याग्रह और

असहयोग के तरीके से करके सफलता प्राप्त की जा सकती है। लेकिन वे इसमें तब तक सफल नहीं हो सकते, जब तक कि वे अपने जीवन से हर प्रकार की हिंसा का भाव निकाल बाहर नहीं करते। एव स्वयंसेवकों को इस बात की शिक्षा नही प्रदान करते कि वे अहिसा से हिंसा का मुकाबला करने का कौशल सीख लें। यही एक तरीका है, जिससे शंकाशील व्यक्तियों को अहिसात्मक प्रति-रक्षा की शक्यता और सामर्थ्य का बोध कराया जा सकता है।

चूंकि अहिसा में निष्ठा रखनेवाले यह नही चाहते कि विविध राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को कायम रखने के लिए सैन्य-शक्ति पर भरोसा रखें, अतएव वे स्वय देश मे सुरक्षा एवं व्यवस्था के लिए पुलिस अथवा सैन्य-शक्ति पर निर्भर न रहेंगे। अतः अपराधों या अव्यवस्था की अवस्था में वे पुलिस की सहायता की अपेक्षा न करके स्थिति को स्वयं अहिसात्मक तरीके से सुलझाने का प्रयत्न करेंगे। वे इस बात की कोशिश करेंगे कि स्वयंसेवकों की स्थायी टुकड़ी—शान्ति-सेना—सघटित कर ली जाय, जो किसी भी क्षेत्र में उपद्रव होने पर उसका शमन कर सके। शान्ति-सेना के ये सदस्य अपने-अपने क्षेत्रों मे हिसात्मक उपद्रवों का सामना करने की विधि सीखकर धीरे-धीरे समाज के सभी सदस्यों को यह बता सकेंगे कि सशस्त्र आक्रमण होने पर अहिसात्मक असहयोग एवं सत्याग्रह की अन्य विधियों से किस प्रकार उसका सामना किया जा सकता है।

सरकार तथा विविध राजनीतिक दल भी ऐसे वातावरण की सृष्टि करने में सहायक हो सकते हैं, जिससे निरस्त्रीकरण की भावना उत्पन्न हो तथा अहिसात्मक प्रतिरक्षा की बात लोगों के

मन मे जमे । राजनीतिक दलों और संघटनों को चाहिए कि वे एकमत से यह निश्चय कर लें कि ऐसे विरोध-प्रदर्शनो का वे त्याग कर देंगे, जिनकी परिणति प्रदर्शनकारियो द्वारा हिसा के अवलंबन में होती है और जिसके फलस्वरूप सरकार को शस्त्र-वल का उपयोग करना पड़ता है। सरकार को भी चाहिए कि देश में उपद्रव होने पर उसका दमन सैन्य-शक्ति से करने की नीति का वह त्याग कर दे तथा लोगों में उत्पन्न असन्तोष एवं द्वेष-भाव के निवारण पर अपना ध्यान केन्द्रित करके वह लोगो को शिक्षित करने का प्रयत्न करे, जिसमे जनता का मत ठीक बने। यदि सरकार यह देखे कि समझाने-बुझाने और समझौते के सभी मार्ग विफल हो चुके है और हिसा रोकने के लिए पुलिस की सहायता लेना अनिवार्य हो गया है, तो उसे चाहिए कि वह पुलिस-शक्ति का कम-से-कम प्रयोग करे तथा इस बात के लिए तैयार रहे कि निष्पक्ष अदालती जॉच होने की अवस्था में वह उस जॉच-समिति को सन्तुष्ट कर सके कि हिंसा रोकने के लिए उसका कदम अनिवार्य था तथा पुलिस-शक्ति का कम-से-कम प्रयोग किया गया है। ◆◆◆

: १३ :

कर-पद्धति

शासन के लिए धन प्राप्त करने के साधनों और पद्धतियो तथा उनको किस प्रकार खर्च किया जाय, इसमें भी सर्वोदय-समाज में वड़ा अन्तर हो जायगा। आज की हमारी कर-पद्धति पिछड़ी हुई और अन्यायपूर्ण है। पहले तो कर वहुत अधिक है।

उनमें से बहुत-से अप्रत्यक्ष है और इनका भार गरीबों पर उचित से अधिक पड़ता है। यद्यपि धनवानों पर भी कर हैं और धन-राशि की दृष्टि से देखा जाय, तो वे भी काफी देते हैं। परन्तु अगर हिसाब लगाया जाय कि अपनी आय का कितना हिस्सा वे शासकीय कोष में देते हैं, तो ज्ञात होगा कि गरीबों के मुकाबले में वे कम ही देते हैं। गरीबों से तो अप्रत्यक्ष करों के रूप में इतना ले लिया जाता है कि उन बेचारों को पता भी नही लगता। यह सब उस समाज-व्यवस्था में अनिवार्य है, जो अपनी दोषपूर्ण खेती और उद्योग-पद्धतियों की बुराइयों को जड़ से मिटाने का प्रयत्न नही करती। फिर आज की हमारी केन्द्रित शासन-पद्धति ऐसी है कि उसमें ऊपर के लोगों को बहुत भारी-भारी वेतन हैं और उसने आमदनी के तमाम अच्छे-अच्छे साधनों को अपने हाथों में रख छोड़ा है और बुनियादी तथा प्रादेशिक इकाइयों के लिए जो साधन छोड़ रखे हैं, वे बिलकुल नाकाफी हैं। इस कारण इन सबको केन्द्र का मुँह ताकना पडता है, जिसका जनता से सीधा संपर्क नहीं होता और इस कारण जो ठीक-ठीक तरह से समझ नहीं पाता कि किन-किन कामों के लिए खर्च करना यहां अति आवश्यक है। खर्च की मद तय करते समय केन्द्र जरूर चाहता है कि वह जनता के लाभार्थ अधिक-से-अधिक खर्च करे। परन्तु चूँकि उससे जनता का सीधा सम्बन्ध नही रहता, इसलिए वह केवल जबानी सिद्धान्त और इच्छा तक रह जाता है। और खर्च ठीक तरह से जनता के लाभ के लिए नहीं हो पाता। वह एक धोखा और मनमानी बन जाता है। सर्वोदय-व्यवस्था में इसे बदलना ही होगा।

सर्वोदय-व्यवस्था के अन्तर्गत मिलनेवाली उन रकमों को (amounts of contribution), जिन्हे आजकल कर कहते हैं, लगाने और वसूल करने का अधिकार बुनियादी इकाइयों—जैसे, गॉव-समाज या नगरों मे नगरपालिका-समितियो और प्रादेशिक सरकारों को प्राप्त रहेगा। इससे छोटी इकाइयों को आय के बारे मे केन्द्र का मुँह नही ताकना होगा। उन्हें सीधे और खासी आय अपने क्षेत्र से मिल जायगी और वे अपने क्षेत्र की जनता की जरूरतों को पूरी करने के लिए आसानी से आवश्यक योजनाओं को अपने हाथ में ले सकेंगी। हॉ, इस आय का एक हिस्सा ये इकाइयाँ राज्य-सरकार और केन्द्र को भी जरूर देंगी। इस हिस्से के अलावा केन्द्र और राज्य के पास आय के अन्य प्रत्यक्ष साधन भी होंगे ही।

इकाइयों द्वारा लगाये गये कर नकद या उपज के रूप मे भी अदा किये जा सकेंगे। जहाँ संभव हो और श्रम बैंक होगे, वहॉ श्रम के रूप मे भी दिये जा सकेंगे।

अप्रत्यक्ष करो की पद्धति प्रगतिसूचक नही। उसका भार गरीबो पर तुलनात्मक दृष्टि से अधिक पड़ता है। उनकी बुनियाद मे एक यह विचार भी होता है कि जनता को सीधे कर अखरते है और इन्हे देने मे वह आनाकानी करती है। इसलिए उस पर इस प्रकार कर लगाना चाहिए कि उसे पता भी न लगे कि वह कर दे रही है। इसलिए सर्वोदय-समाज में सारे अप्रत्यक्ष करों को हटा दिया जायगा और एक निश्चित रकम से ऊपर की आयवालो से सीधे भेट की रकम वसूल की जायगी। यह सीधा आय-कर सब प्रकार की (खेती की और अन्य भी)

आमदनी पर लगाया जायगा। और इसमें आमदनियो की श्रेणियाँ बाँधकर ज्यों-ज्यों आमदनी बढ़ती जायगी, बढ़ी हुई आय पर अधिकाधिक प्रतिशत कर वसूल किया जायगा, ताकि हर मनुष्य पर उसकी आय के अनुपात में ही कर का बोझ पड़े। जिनकी आय इस न्यूनतम मर्यादा से भी कम हो,वे भी गाँव-सभा को अपना हिस्सा अवश्य दें। परन्तु यह ऐच्छिक और प्रतीक के रूप में होगा।

यदि किसी व्यक्ति की आय के साधन अनेक इकाइयों या क्षेत्रों मे बिखरे हों, तो केन्द्रीय प्रशासन के लिए कम-से-कम सक्रमण-काल में यह आवश्यक होगा कि वह ऐसे लोगों से प्राप्त होनेवाले कर का तखमीना करने और उसे सीधे वसूल करने का उत्तरदायित्व स्वयं अपने सिर ले। इस कार्य के लिए तथा अनेक स्तरों पर प्रशासन की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए यह आवश्यक होगा कि प्रशासन की अनेक इकाइयों को कार्य-संचालन के उद्देश्य से दी जानेवाली रकम का कोटा निर्धारित कर दिया जाय।

आमदनी पर लगाये गये इस कर से ठीक आय तभी होगी, जब कर वसूल करने योग्य आय से कम आमदनीवाले परिवारों की संख्या काफी घट जायगी। फिर संक्रमण-काल में, जब कि प्रादेशिक अधिकारियों को क्षेत्र की उद्योग-व्यवस्था का पुनः-संगठन करने के लिए बड़ी-बड़ी रकमों में पूंजी जुटानी पड़ेगी, तब केवल इस मद से आवश्यक मात्रा में आय जुटाना मुश्किल होगा। यह कमी सम्पत्तिदान के रूप में प्राप्त होनेवाली रकम से पूरी की जायगी। या जरूरत हुई, तो संक्रमण-काल में कुछ अप्रत्यक्ष कर भी लगाये जा सकते हैं। परन्तु यह करते हुए इस

बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा जायगा कि इन करों का भार केवल धनवानों पर ही पड़े। सक्रमण-काल मे वुनियादी इकाइयों, राज्य और केन्द्र द्वारा शासकीय कोष मे नीचे लिखी मदों से कर वसूल किये जा सकते है :

गाँव-सभाएँ—

१. सीधा आय-कर
२. असली जायदाद पर कर
३. विलास की चीजों पर कर
४. सिचाई की जमीन पर कर
५. केन्द्रित उद्योगों द्वारा वनी चीजो पर ऑक्ट्रॉय
६. उत्तराधिकार पर कर

राज्य—

१. आय-कर का हिस्सा
२. मुल्की शासन से आय
३. प्रदेश मे संगठित सार्वजनिक सेवा-संस्थानो से और राज्य के कामों से
४. वनों की उपज से

केन्द्र—

१. आय-कर का हिस्सा
२. सार्वजनिक सेवा-कार्यो से आय
३. केन्द्र द्वारा चलाये जानेवाले उद्योगो से
४. राज्य द्वारा चालित व्यापार-संस्थानो से
५. शासकीय आय
६. आयात और निर्यात कर
७. खनिज द्रव्य और वन की उपज से

: १४ :

योजना का खर्च कहाँ से आयेगा ?

जैसा कि इस योजना के प्रारम्भिक हिस्सो में बताया गया है, यह सर्वोदय-योजना दूसरी योजनाओ से अनेक बातों में भिन्न होगी। इसके लक्ष्य भिन्न होंगे, काम भिन्न होंगे, दृष्टिकोण भिन्न होगा और योजना बनाने और उसे कार्यान्वित करने के तरीके भी भिन्न होंगे। यह योजना ऐसी नहीं कि जिसे राष्ट्र की राजधानी में बैठकर दस-पाँच अधिकारी बना लें और मुख्यतः शासन-यंत्र के द्वारा और जहाँ संभव हो, जनता का सहयोग लेकर कार्यान्वित कर ले।

हमारी योजना गाँवों में बनेगी और इसे गाँव-सभाएँ बनायेंगी। फिर इन ग्राम-योजनाओं को प्रदेश और राष्ट्रीय आधार पर समन्वित किया जायगा। इसलिए जब तक गाँव-सभाओं द्वारा बनकर ये योजनाएँ समन्वय करनेवाले अधिकारियों द्वारा समन्वित नही कर ली जातीं, इनमें कितना खर्च होगा, इसका अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता।

यह कहा जा सकता है कि पिछले अध्यायों में जिस नियोजन को कार्यान्वित करने की कल्पना की गयी है, उसकी पूर्ति के लिए नकदी के रूप में आवश्यक पूंजी जितनी लगेगी, उसकी अपेक्षा कम ही पूंजी में निश्चित लक्ष्य की पूर्ति भारी और केन्द्रीकृत उद्योगों के माध्यम से हो सकती हैं। यह जरूर है कि सर्वोदय-संयोजन के लिए अपेक्षाकृत अधिक पूंजीगत सामग्री और सेवाएँ, जिसमें श्रम आदि के रूप में प्राप्त होने-

वाली सेवाएँ भी शामिल हैं, आवश्यक होंगी। तभी योजना सफलतापूर्वक कार्यान्वित हो सकती है। जैसा कि अब तक बार-बार बताया गया है, सर्वोदय-योजना में पूँजी जुटाने और लगाने पर नही, मनुष्यों को काम देने पर अधिक ध्यान दिया जायगा। फिर कार्यान्वित करने के लिए इस बोझीले, कीमती और जटिल यन्त्र की जरूरत नही होगी। इसके बनाने और अमल मे यह हर कदम पर स्थानीय लोगो के उत्साह और प्रयास पर निर्भर रहेगी।

यद्यपि यह बताना कठिन है कि इस पर कुल कितना धन लगेगा, तथापि यह जरूर बताया जा सकता है कि वह प्राप्त कैसे किया जा सकता है। वह इस प्रकार है: (१) करोवाले अध्याय मे बताये अनुसार करों से मिलनेवाली आय से, (२) बचत का उपयोग करके, (३) आज के खानगी उद्योग-कारखानों मे लगी पूँजी, यन्त्र-सामग्री और अन्य साधनो की मदद से, (४) श्रमदान, सम्पत्तिदान, सूतांजलि और अन्य प्रकार के स्वेच्छापूर्वक दिये गये चन्दों के द्वारा, (५) दूसरे देशों से शुद्ध हेतुपूर्वक और बिना किसी शर्त के दिये जानेवाले यन्त्रोपकरण, पूँजी और शास्त्रीय ज्ञान आदि से और घाटा उठाकर भी कि जिसकी पूर्ति हम उत्पादन द्वारा दकर सके।

इतने पर भी अगर हम योजना को निश्चित समय में कार्यान्वित करने के लिए काफी साधन नही जुटा पाये, तो हम योजना की अवधि को बढ़ा देगे। परन्तु निश्चित समय में योजना के निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए योजना के सिद्धान्तों क़ी हत्या हम कभी नही करेगे।

◆◆◆

: १५ :

योजना का अमल और उसका यंत्र

चूंकि योजना का निर्माण और अमल भी ऊपर केन्द्र के द्वारा नही, ठेठ नीचे से होगा, इसलिए उसे कार्यान्वित करने का तरीका और साधन भी उसके मूलभूत सिद्धान्तों के अनुरूप पूरी तरह कारगर और जनतंत्री ही होंगे। इसलिए इस जिम्मेवारी को पूरी करने के लिए जितनी सत्ता और अनुकूलताओं की जरूरत होगी, वे सब बुनियादी इकाइयों को दे देनी होंगी। इस तरह इस योजना में सत्ता का विकेन्द्रीकरण श्रीगणेश मे ही शुरू हो जाता है।

यह बताया जा चुका है कि स्थानीय समाज स्वयं संयोजन की रूपरेखा स्थिर करने और उसे कार्यान्वित करने के लिए जिम्मेदार होगा। गाँवों मे यह काम पंचायतों और बहुधंधी सहकारी समितियों के माध्यम से गाँव-समाज करेगा और नगरों में नगरपालिकाओं तथा उसकी बहुधंधी सहकारी समितियों के माध्यम से वयस्क लोग करेंगे। पंचायतों या नगरपालिका-समितियों की यह भी जिम्मेदारी होगी कि वे अपने क्षेत्र में निवास करनेवाले लोगों के जान-माल की रक्षा करें, समाजविरोधी तत्त्वों से निपटें, शिक्षा, स्वास्थ्य-चिकित्सा और मनोरंजन के साधनों की व्यवस्था करें तथा समाज के सामान्य जीवन को व्यवस्थित रखें। इन समितियों के चुनाव गाँवों अथवा नगरों के वयस्क लोग करेंगे। इसके निर्णय प्रायः

सर्वसम्मत हुआ करेंगे। जब ये समितियाँ न्याय का काम करेंगी, तो इनके निर्णय सर्वसम्मत ही होंगे।

शिक्षा और मनोरंजन का प्रबन्ध करनेवाली संस्थाएँ गाँव मे समाज के सांस्कृतिक जीवन का संगठन करेंगी।

आर्थिक प्रवृत्तियों का संगठन-सचालन बहुकाजी सहकार समितियाँ करेंगी। भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों के लिए उसके अलग-अलग भाग होगे। योजना को सफल बनाने के लिए शास्त्रीय सलाह या विशेष प्रकार के कौशल की जरूरत होगी, तो उसका प्रबन्ध भी वह कर देगी। उसमें नीचे लिखे विभाग होंगे :

(१) सपूर्ण सयोजन।

(२) व्यापार।

(३) उद्योग—इसके अन्दर कच्चा माल प्राप्त करना, प्रबन्ध, उत्पादन और स्वतत्र कारीगरोवाले तथा सहयोग समितियोंवाले क्षेत्र मे बनाये जानेवाले माल के बेचने का प्रबन्ध शामिल होगे।

(४) खेती और उद्योगो के लिए पूँजी का प्रबन्ध करना।

(५) बैंक (जहाँ-जहाँ संभव हो, वहाँ श्रम बेंकों का भी प्रबन्ध करना)।

(६) बीमा।

प्रत्येक प्रदेश या राज्य की बहुकाजी सहकारी समितियों के योजनासम्बन्धी प्रवृत्तियों का समन्वय-सचालन प्रदेश या राज्य के योजना-आयोग द्वारा होगा।

राज्यों के योजना-आयोगों के प्रतिनिधियों से एक राष्ट्रीय योजना-आयोग बनेगा। केन्द्रीय योजना-आयोग राष्ट्र की जरूरतो

और साधनों का पता लगायेगा। वह योजना के सिद्धान्त कायम करेगा और प्रदेशों तथा राज्यों के मार्ग-दर्शन के लिए एक मोटी-सी रूपरेखा बना देगा। और राष्ट्रीय स्तर पर इन सबकी योजनाओं का समन्वय और एकीकरण करेगा।